ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 26 अगस्त 2018 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार, 26 अगस्त 2018 से 01 सितम्बर 2018

श्रावण शु. – 15 ● वि० सं०–2075 ● वर्ष 60, अंक 34, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 195 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,119 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

बी.बी.के.डी.ए.वी. अमृतसर में कर्मफल पर बोले सत्यजित आर्य

बी.के.डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर के एन.एस.एस. यूनिट द्वारा कर्म–दर्शन और इसके प्रभाव तथा सामाजिक संबंधों पर एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य वक्ता आचार्य सत्यजित आर्य (प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्यों, एम.डी.(आयुर्वेद) दर्शनाचार्य, व्याकरणचार्य एवं लेखक) और उनकी धर्मपत्नी डॉ. अर्चना विनोद (क्लीनिकल साइकोलोजिस्ट) रहीं।

अपने व्याख्यान में आचार्य जी ने कहा कि किसी भी घटनाक्रम के घटित होने के विषय में तार्किक दृष्टि से सोचना चाहिए। यदि जीवन में किसी के साथ अन्याय होता है, तो यह निश्चित है कि उसे एक दिन न्याय मिलेगा और अन्याय करने वाले को सजा भुगतनी पड़ेगी। यही कर्म का अटल सिद्धांत है।

डॉ. अर्चना विनोद ने सामाजिक संबंधों पर बात करते हुए कहा कि किसी भी संबंध को स्थायी बनाये रखने के लिए वफादारी, बातचीत और ईमानदारी मूलभूत शर्तें हैं।

प्राचार्य (डॉ.) पुष्पिन्दर वालिया ने इस अवसर पर मेहमानों का स्वागत करते हुए कहा कि ऐसे व्याख्यानों का आयोजन सभी के लिए अत्यंत लाभप्रद है, इससे छात्राओं का ज्ञानबर्द्धन तो होता ही है उनका मार्ग–दर्शन भी होता है।

इस अवसर पर मधुरानंद (पूर्व लायब्रेरियन और संत) भी उपस्थित थीं। मंच संचालन प्रो. अनीता नरेन्द्र ने किया। एन.एस.एस. के को–आर्डिनेटर प्रो. सुरभि सेठी, प्रो. प्रिया शर्मा, प्रो. अल्पना वाही, (डॉ.) प्रो. नेहा सहगल, प्रो. प्रियंका चुघ, प्रो. राजदीप मेहरा इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित थे।

दयानंद पब्लिक स्कूल शिमला में मौलिक कर्त्तव्य सप्ताह

दयानंद पब्लिक स्कूल शिमला में स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में देश की भावी युवा पीढ़ी को स्वतंत्रता देश भक्ति की भावना को जाग्रत एवं बनाए रखने और अपने मौलिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाने हेतु साप्ताहिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। जिसमें 9/8/2018 से 15/8/2018 तक चलने वाले सप्ताह में कार्यक्रमों के अंतर्गत अनेक रंगारंग कार्यक्रम कराये गये।

विद्यालय की प्रधानाचार्या जी द्वारा दीप प्रज्ज्वलन के साथ नर्सरी और

तृतीय कक्षा के साथ 5वीं, 6ठी के छात्रों की विभिन्न प्रस्तुतियां प्रस्तुत की गयीं, जिस में बच्चों ने फैन्सी ड्रेस, समूहगान, संभाषण प्रतियोगिता, संगणक फलक प्रस्तुति (पीपीटी), लघु नाटिका में उत्साह एवं उमंग के साथ भाग लिया।

छात्रों ने नशा निवारण के लिए लोगों में जागरूकता बढ़ाने के लिए शहर में घूम–घूम कर, नारे लगाकर, रैली निकाल कर सभी को नशे के दुष्प्रभावों से अवगत कराया।

डी.ए.वी. जसोला विहार में प्रदर्शनी एवं पुरस्कार वितरण समारोह

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, जसोला विहार, दिल्ली की ओर से गत सप्ताह 28 जुलाई, 2018 को विद्यालय की प्रदर्शनी 'अभिव्यक्ति' तथा 'पुरस्कार वितरण समारोह' का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी का विषय था –'कला: विभिन्न विषयों में अध्ययन/अध्यापन का साधन।'

इस आयोजन में मुख्य अतिथि के तौर पर श्री प्रबोध महाजन (अध्यक्ष) उपस्थित हुए। मंत्रोचारण की मंगल ध्वनियों तथा दीप–प्रज्ज्वलन के साथ ही 'नन्हीं पौध' भेंट कर अतिथियों का स्वागत किया गया।

इस कार्यक्रम में विशेष तौर पर स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय तथा ड्यूक विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका से आए विदेशी छात्र भी सम्मिलित थे। कक्षा पहली से बारहवीं तक के विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गए अनेक चित्रों, प्रतिमानों, प्रस्तुति इत्यादि से सज्जित इस प्रदर्शनी में विद्यार्थियों की रचनात्मकता तथा सृजनात्मकता देखते ही बनती थी।

कक्षा दसवीं तथा बारहवीं में सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को सम्मानित करने हेतु 'पुरस्कार वितरण समारोह' का आयोजन किया गया। डी.ए.वी. जसोला के विद्यार्थियों ने इस वर्ष भी सी.बी.एस.ई. द्वारा आयोजित बोर्ड परीक्षाओं में विद्यालय का नाम गौरवान्वित किया। सारांश गुप्ता, निकिता झा, प्रिया सिंह ने विज्ञान, वाणिज्य

एवं कला विषयों में क्रमशः 95%, 94.2 % तथा 90.2% अंक अर्जित किए।

विद्यालय के अध्यक्ष, श्री प्रबोध महाजन द्वारा विद्यार्थियों को उनके सराहनीय प्रदर्शन हेतु बधाइयाँ दी गईं।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 26 अगस्त 2018 से 01 सितम्बर 2018

आओ, देवों के मार्ग पर चलें

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आ देवानामपि पन्थामगन्म, यच्छक्नवास तदनुप्रवोढुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता, सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति।।
अथर्व 16.56.3

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अपि)** क्या **(देवानां)** देवों के **(पन्थां)** मार्ग पर **(आ– अगन्म)** [हम] चलें? [हाँ], **(यत्)** यदि **(तत् अनुप्रवोढुम्)** उस पर स्वयं को चलने में **(शक्नवाम)** समर्थ हों। **(अग्निः)** आत्मा **(विद्वान)** विद्वान् है, **(सः)** वह **(यजात्)** यज्ञ करे, **(सः)** वह **(इत्)** सचमुच **(होता)** होम–निष्पादक है। **(सः)** वही **(अध्वरान्)** यज्ञों को और **(सः)** वही **(ऋतून्)** ऋतुओं को **(कल्पयाति)** रचाये।

● आओ, हम देवों के मार्ग पर चलें। यज्ञ के तंतु से बंधे रहना ही देवों का मार्ग है। देखो,ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पृथिवी, ऋतु, संवत्सर आदि देव कैसे 'यज्ञ' के मार्ग पर चल रहे हैं। कभी उनके यज्ञ–पालन में व्यतिक्रम नहीं होता। शरीर में भी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि देव कैसे संगठित हाक देवयान का अवलम्बन कर शरीर–यज्ञ को चला रहे हैं। समाज में भी 'देव' पदवी को पाये हुए महापुरुष 'यज्ञ' के ही पथ पर चल रहे हैं। और, सबसे बड़ा देवों का देव परमात्मा भी निरन्तर देव–मार्ग पर चलता हुआ इस ब्रह्मांड–यज्ञ का सम्पादन कर रहा है। हम चाहते हैं कि हम भी इस देव–मार्ग के पथिक बनें। क्या तुम कहते हो कि इस मार्ग पर चलना अति कठिन है, तलवार की धार पर चलने के समान है, अतः पहले अपनी शक्ति को तोल लो कि तुम इस पर स्थिर रह भी सकोगे या नहीं, उसके पश्चात् इस मार्ग पर पग बढ़ाना? सुनो, हमने अपने सामर्थ्य को भलीभांति परख लिया है। हमारा आत्मा 'अग्नि' है, अग्रणी है, तेज का पुंज है, ज्योतियों की ज्योति है। वह 'विद्वान' है, देवों की राह पर चलना और चलाना जानता है। अतः हमें देव–प्रदर्शित यज्ञ–मार्ग भटक जाने का कोई भय नहीं है। हम निश्चिंत होकर उसके हाथों में अपनी 'यज्ञ' की पतवार सौंप रहे हैं। वह 'होता' है, यज्ञ– निष्पादन में कुशल है,संस्कृत हवि का होम करने में निष्णात है। वह जानता है कि यज्ञ को 'अध्वर' अर्थात् हिंसा–रहित ही होना चाहिए। भद्रजनों को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया यज्ञ यज्ञ नहीं है। हमारा आत्मा 'अध्वर' यज्ञों को रचाये और वही यह भी देख कि किस यज्ञ के लिए कौन–सी ऋतु, कौन–सा समय उपयुक्त है क्योंकि काल–अकाल का विचार किये बिना प्रारम्भ किया गया यज्ञ सफल नहीं होता। आओ, हम देव–पथ के पथिक बनें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

बोध कथाएँ

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी ने **''मन जीते, जग जीते''** पर कथा सुनाते हुए कहा वहीं जगत् को जीत सकता है। "जो मन को जीत लेता है।" **''मन को वश में रखिये''** पर कथा सुनाते हुए कहा मन की वास्तविकता को समझो! यह जड़ है। उसमें कोई शक्ति नहीं। शक्ति तुम्हारे अन्दर है। ऐसा समझोगे तो मन वश में अवश्य हो जायेगा। **"पहले मन को निर्मल करो"** पर कथा सुनाते हुए कहा मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा–करकट और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है, तब तक उपदेश के अमृत का लाभ नहीं होगा। उपदेश का अमृत प्राप्त करना है तो इससे पूर्व मन को शुद्ध करना चाहिये, चिन्ताओं को दूर कर देना चाहिये, बुरे संस्कारों को समाप्त कर देना चाहिये। तभी ईश्वर का नाम वहाँ चमक सकता है और तभी सुख और आनन्द की ज्योति जाग उठती है।

आगे पढ़ेंगे तीन लघु कथाएँ

इन्द्रियों को वश में रखने की विधि

स्वामी रामतीर्थ जब प्रोफेसर तीर्थराम थे, तब लाहौर के एक कॉलिज में पढ़ाते थे। वह रहते थे लुहारी दरवाज़ा में। कॉलिज से घर को आ रहे थे, तो लुहारी दरवाज़े में उन्होंने एक व्यक्ति को टोकरी में रखकर नींबू बेचते हुए देखा। पीले रंग के रसभरे नींबू थे। मुख में पानी आ गया। जिह्वा ने कहा–"क्रय कर लो, उनका स्वाद बहुत उत्तम है।"

तीर्थराम थोड़ी देर रुके। फिर आगे बढ़ गये। आगे जाकर जिह्वा फिर मचली; उसने कहा–"नींबू अच्छे तो थे, नींबू खाने में हानि क्या है?"

तीर्थराम उल्टे आये। नींबू को देखा। वास्तव में बहुत उत्तम थे। उन्हें देखकर फिर घर की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर गये तो जिह्वा फिर चिल्ला उठी–"नींबू का रस तो बहुत अच्छा है। नींबू तो खाने की चीज़ है। उसे खाने में पाप क्या है?"

तीर्थराम पुनः नींबूवाले के पास आ गये। दो नींबू मोल ले लिये। घर पहुँचे। देवी से कहा– "चाकू लाओ।" उसने चाकू लाकर रख दिया। तीर्थराम चाकू को नींबू के पास और दोनों को अपने समक्ष रखकर बैठ गये। बैठे रहे, देखते रहे। अन्दर से आवाज़ आई–"इन्हें काटो, काटने में क्या हानि है?"

रामतीर्थ ने चाकू उठाया और एक नींबू को काट दिया। मुख में पानी भर आया। अन्दर से फिर प्रेरणा हुई–"इसे चखकर तो देखो, इसका रस बहुत उत्तम है।"

रामतीर्थ ने एक टुकड़े को उठा लिया, जिह्वा के समीप ले गये। नींबू को उसके साथ लगने नहीं दिया। अन्दर से किसी ने पुकारकर कहा–"तू क्या इस जिह्वा का दास है? जो यह जिह्वा कहेगी, वही करेगा? जिह्वा तेरी है, तू जिह्वा का नहीं।"

समीप खड़ी पत्नी ने कहा–"यह क्या करते हो? नींबू को लाये, इसे काटा, अब खाते क्यों नहीं?"

जिह्वा ने कहा–"शीघ्रता करो। नींबू का स्वाद बहुत उत्तम है।"

रामतीर्थ शीघ्रता से उठे। कटे और बिना कटे हुए दोनों नींबुओं को उठाकर गली में फेंक दिया और प्रसन्नता से नाच बैठे–"मैं जीत गया!"

यह है इन्द्रियों को वश में करने की विधि!

मन को वश में रखो!

बहुत वर्षों की बात है। मैं तब छोटा था, परन्तु मैं नहीं, यह शरीर छोटा था। मैं तो सदा एक–सा रहता हूँ। यह शरीर ही घटता–बढ़ता रहता है।

मैं था अपने गाँव 'जलालपुर जट्टाँ' में। इसके निकट ही महन्तों का एक बाग था। मैं गाँव से इस बाग की ओर जा रहा था। मार्ग में एक बहुत बड़ा जोहड़ आता था, जिसे मुसद्दीवाना कहते थे। यह जोहड़ अभी कुछ दूरी पर था कि पीछे से शोर सुनाई दिया। मैंने मुड़कर देखा गाँव के एक मुसलमान चौधरी घोड़े पर चिपके बैठे थे और घोड़ा सरपट दौड़ा आता था। कुछ लोगों ने घोड़ा रोकने का प्रयत्न भी किया, पर वह रुका नहीं। चौधरी जी को मैं जानता था। ऊँची आवाज़ में पूछा–"चौधरी जी! इतनी तेज़ी से कहाँ जा रहे हो?"

चौधरी जी घोड़े से चिपटे–चिपटे बोले–"इस घोड़े को पता है, मुझे नहीं। मुझे तो गुजरात जाना है।"

मैंने आश्चर्य से सोचा कि गुजरात तो हमारे गाँव के दक्षिण में है। चौधरी जी उत्तर की ओर क्यों भागे जाते हैं? तभी घोड़ा पहुँचा मुसद्दीवाना के पास। शायद सामने से कोई वस्तु दिखाई दी थी उसे। वह ज़ोर से उछला। मैं भी चौधरी साहब

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

रक्षा बन्धन का शास्त्रीय स्वरूप : श्रावणी उपाकर्म

● रामनिवास 'गुणग्राहक'

महर्षि देव दयानन्द सरस्वती के रूप में इस देश और विश्व के सौभाग्य ने अँगड़ाई लेकर जागने का जो पुण्य प्रयास किया था, उसका पूरा लाभ लेने के लिए हमें जो तप या श्रम करना चाहिए, आलस्य–प्रभाव व अविद्या से ग्रस्त भारतीय जनमानस वह तप व श्रम नहीं कर सका। परम्परावादी प्रवृत्ति के चलते हम भारतीय ऋषि द्वारा पुनः प्रकाशित वेद विद्या के प्रखर तेज को सहन और वहन नहीं कर सके। ऋषिवर ने सप्रमाण, सतर्क यह समझाने का सफल प्रयास किया कि महाभारत के भयंकर युद्ध के बाद हमारे बल–पराक्रम और हमारी बौद्धिक प्रतिभा को बहुत गहरा आघात लगा। चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने वाला बल–पौरुष एक–दूसरे पर घात–प्रतिघात में नष्ट–भ्रष्ट होना ही था। विश्वगुरु का गौरव जब टुकड़ों में स्वार्थवश कट–छँट और बँट गया तो वाग्विलास और विवाद–वितण्डा का रूप धर तर्कों की तलवार से क्षत–विक्षत होकर चेतना शून्य हो गया। कोरी तर्क वादिता से प्रताड़ित हमारा ईश्वरीय ज्ञान वेद अधकचरे आचार्यों के हाथों का खिलौना बन कर रह गया **'विवेकभ्रष्टानां विनिपात शतमुखः'** के अनुसार सत्य–असत्य के सच्चे विवेक से भ्रष्ट होकर हम सर्वतो मुख पतित होने लगे। उस पतित–अवस्था में बौनी सोच का दुष्परिणाम ये निकला कि अधकचरे आचार्यों ने हमारी वैदिक परम्परा के ऋषियों के ज्ञानागम् ग्रन्थों में मनमानी मिलावटें कर डालीं और विश्व द्वारा वैदिक संस्कृति को प्रदूषित कर दिया। देश का शेष दुर्भाग्य क्रूर मुस्लिम आक्रान्ताओं और कुटिल अंग्रेज़ों के रूप में आ धमका। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने हमारे पुस्तकालयों से अपने हमाम गर्म किये तो अंग्रेज़ों ने अवशिष्ट ग्रन्थों को विद्रूपित करके अविश्वसनीय बनाने का सुविचारित षड्यन्त्र चलाया, जो आज भी अबाध गति से चल रहा है। मानवीय सभ्यता, दैवीय संस्कृति और नर–निर्माण में सक्षम संस्कारों से सुसज्जित भारत रूपी लहलहाते वृक्ष की ज्ञान परम्परा रूपी जड़ों में स्वार्थ जन्य अपशिष्ट विचारों का मैलापन डालने का पाप ही फलीभूत होकर मुस्लिम आक्रान्ताओं व कुटिल अंग्रेज़ों के रूप में कालान्तर में प्रकट हुआ। इन सबके सम्मिलित कुकृत्यों की काट लेकर आने वाले ऋषि दयानन्द की कृपा से हमें हमारे प्राचीन गौरव की एक झलक प्राप्त हुई, हमारे दुर्बल मन–मस्तिष्क उसे सम्भाल न पाये और आज धीरे–धीरे वो वैदिक संस्कृति की धवलधार भी धुँधली होने लगी है। आर्यो! अपनी जीवन–ज्योति की आहुति देकर आचार्य दयानन्द द्वारा रचाये विश्वकल्याण यज्ञ की आग्नि आने वाली पीढ़ियों तक जलाये रखो। भरोसा रखो, निकट भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ इस यज्ञ को सफलता के शिखर तक अवश्य ले जाएँगी। अवश्य ही ले जाएँगी!!

सुधी पाठक! क्या आप ऋषि दयानन्द द्वारा रचाये विश्वकल्याण यज्ञ की प्रज्ज्वलित समिधा बनने को तैयार हैं? न करने के लिए हमारे पास अवकाश ही नहीं है, कल हमारे पास सम्भालने को कुछ नहीं बचेगा। अपने जीवन से, अपने पुत्र–पौत्रों से थोड़ा–सा भी प्यार है तो हमें वैदिक संस्कृति को बचाने और बढ़ाने में अपना तन–मन और धन लगाना ही होगा। **'छन्दः पादौ वेदस्य हस्तौ कल्पऽपठ्यते'** के अनुसार कल्पशास्त्र को ऋषियों ने वेदांगों में हाथ ही उपमा दी है। वर्ण व्यवस्था में मुख स्थानीय ब्राह्मण का काम विद्या–व्यवहार है तो हाथ स्थानीय क्षत्रिय का काम रक्षा करना कहा है। इसी प्रकार वेद के अंगों में कल्प को हाथ कहना सिद्ध करता है कि वेद और वैदिक संस्कृति की रक्षा कल्प साहित्य पर ही निर्भर है। कल्प साहित्य में हमारे गृह्यसूत्रों व शुल्व सूत्रों की गणना है, जिनमें हमारे पर्वों, संस्कारों व यज्ञों का सांगोपांग विज्ञान–सम्मत वर्णन है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हमारे पर्व–त्यौहार, हमारे पंच महायज्ञ और हमारे संस्कारों के शास्त्रोक्त स्वरूप में ही वेद और वैदिक संस्कृति की सुरक्षा निहित है। वेद और वैदिक संस्कृति की सुरक्षा–संवृद्धि चाहने वालों का प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने पर्वों यज्ञों व संस्कारों के शास्त्रीय स्वरूप को समझें व दूसरों को समझाएँ। संस्कृति की सुरक्षा–संवृद्धि की दृष्टि से पर्वों की बात करें तो श्रावणी उपाकर्म के शास्त्रीय स्वरूप को समझना और इसे शास्त्रोक्त रीति से मनाना सुधार के बीजारोपण जैसा है। सर्व प्रथम श्रावणी उपाकर्म को समझें, वर्ष के बारह महीनों का नामकरण हमारे ऋषियों ने खगोलीय घटनाओं के आधार पर किया। जिस नक्षत्र को पूर्णिमा होती है, उस माह का नाम उस नक्षत्र पर आधारित है। जैसे, चित्रा नक्षत्र के कारण चैत्र, विशाखा के कारण वैशाख। इसी प्रकार श्रवण नक्षत्र को पड़ने वाली पूर्णिमा श्रावणी और महीना श्रावण या सावन कहलाता है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार–**'अथातो स्वाध्ययोपाकर्मः'** अर्थात् स्वाध्याय को उपाकर्म कहते हैं। पर्व पद्धति में मनुस्मृति के दो श्लोक–**"श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां––विप्रोऽर्धपञ्चयान्।।"** तथा **"पुष्ये तुछन्दसां कुर्माद्––––पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि।।"** देकर बताया है कि मनु आदि प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार श्रावण माह की पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर पौषी (पौष माह की) पूर्णिमा या माघ माह के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन तक उपाकर्म का अनुष्ठान चलता था।

उपाकर्म अर्थात् स्वाध्याय की बात करें तो वैदिक संस्कृति और साहित्य के सामान्य जानकार भी यह जानते और मानते हैं कि स्वाध्याय के लिए प्रभु की कल्याणी वेदवाणी को ही सर्वोत्तम माना गया है। महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में लिखते हैं–**"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षड्ङ्गो वेदोऽध्येयोज्ञेयश्च"**– अर्थात् ब्राह्मण का तो यह स्वाभाविक धर्म है कि वह छः अंगों सहित वेद का सतत् स्वाध्याय करे! महर्षि मनु महाराज वेद को धर्म का मूल मानते हैं–"वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"। मनु की मान्यता है–**'धर्म जिज्ञासमानाना प्रमाणं परमं श्रुतिः'**–धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद परम् प्रमाण है। महाभारत के शान्ति पर्व में आता है–**'सर्व विदुर्वेदविदो, वेदे सर्व प्रतिष्ठितम्। वेदे हि निष्ठा सर्वस्य, यद्पदस्ति नास्ति च।।'** (270–43)। अर्थात् वेद वित् सब कुछ जानते हैं, वेद में सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। सबकी निष्ठा वेदों के प्रति है, जो ज्ञान वेद में है वो अन्यत्र कहीं नहीं है। महर्षि मनु भी वेद में सम्पूर्ण विद्या मानते हुए लिखते हैं–**'वेदेषुसर्वा विद्या सन्ति भूलोद्देश्यतः'** अर्थात् वेदों में मूल रूप से सब विद्याएँ हैं। इसीलिए देव दयानन्द घोषणा करते हैं–'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम् धर्म है।' चिन्तनीय यह है कि जिस वेद विद्या के पुनरुद्धार के लिए ऋषिवर अपना पूरा जीवन खपा गये, जिस वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना ऋषिवर हमारे लिए धर्म ही नहीं परम् धर्म बताकर गये हैं, दुर्भाग्य से आज उसी वेद का पढ़ना–पढ़ाना ही छूट गया तो सुनना–सुनाना कैसा?

आर्यो! हमारे पूर्वज ऋषि–महर्षि कितने दूर दृष्टा थे कि वे वेद को हमारे पारिवारिक जीवन और सामाजिक ताने–बाने के साथ इतनी गहराई से बाँध गये थे ताकि वेद विद्या हमारे जीवन में सदा–सदा के लिए ओतप्रोत हो जाए। जन्मते ही बालक के कान में –**'त्वम् वेदोऽसि'** कहना हो या – **'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'** की अवधारणा, दीक्षान्त के समय **'स्वाध्यायो या प्रमदः'** का आदेश हो या संन्यास के समय–**'संन्यसेत् सर्व कर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्'** की मर्यादा–सर्वत्र वेद से जुड़े रहकर जीवन वेदमय बनाने के स्वर सुनाई दे रहे हैं और हम हैं कि सबको अनसुना करके वेद विद्या से विमुख हुए बैठे हैं। श्रावणी उपाकर्म हर वर्ष वेद से जुड़ने की प्राचीन परम्परा को प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत करता हुआ आता है, हम आर्य कहलाने वाले वेद स्वाध्याय का महत्त्व समझें। आदि शंकराचार्य कठोपनिषद का भाष्य करते हुए लिखते हैं– **'नहि उपेक्षितव्यं इति श्रुतिः अनुकम्पा आह अतृवत्'** (1.3.14) अर्थात् वेद की कभी उपेक्षा मत करो, वेद माँ के समान स्नेह पूर्वक हमारे कल्याण की बात कहते हैं। आर्यों! स्वयं को शंकराचार्य के शिष्य कहने वाले कथित सनातन धर्मी तो सनातन वेद विद्या से विमुख होकर पुराण पन्थी बनकर पाखण्डों और अन्धविश्वासों के अन्धकूप में पड़े हैं, ऐसे में वेद विद्या के लिए जीवन खपा देने वाले ऋषि दयानन्द के अनुगामी हम आर्यों का कर्त्तव्य बढ़ जाता है। धरती तल पर केवल आर्य समाज ही है जो प्रभु की वेद वाणी के लिए ही जीता–मरता है। हम भी आलस्य–प्रमाद में पड़े रहे, या क्षुद्र स्वार्थों के लिए लड़ते रहे तो हमारा अपराध आतंकवादियों के अपराधों से भी बड़ा अपराध होगा। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है, कर्मफल व्यवस्था के तात्त्विक स्वरूप को समझने वाले मनु महाराज ने जो दण्ड विधान किया है, उसके अनुसार विद्या विभूषित ब्राह्मण और राजव्यवस्था में बड़े पद पर आरूढ़ व्यक्ति को अधिक दण्डनीय माना है। जिनके कन्धों पर देव दयानन्द वेद–विद्या के प्रचार–प्रसार का महनीय दायित्व रख गये, या जिन्होंने आर्य समाज से जुड़कर स्वेच्छा से यह उत्तरदायित्व स्वीकारा है, उन आर्यों की कर्तव्य परायणता विश्वकल्याण के द्वार खोल सकती है। दूसरी ओर देखें तो उनकी कर्तव्यहीनता वेदविद्या की सुलभता को संकट में डाल सकती है। हम जिस ज्ञान परम्परा के प्रतिनिधि बने हुए हैं, उसमें कुछ न करना भी भयंकर पाप है। एक गोदाम की सुरक्षा में नियुक्त सिपाही और देश की सीमा की सुरक्षा में नियुक्त सैनिक, इन दोनों की असावधानी का परिणाम एक समान नहीं हो सकता तो इनका दण्ड भी समान नहीं होगा। आर्य समाज से जुड़ा हर व्यक्ति प्रभु की वेदवाणी के प्रचार–प्रसार अभियान से जुड़ा ऐसा महान् सैनिक है, जिसके कन्धों पर विश्वकल्याण का भार है। श्रावणी पर्व हमें हमारे उस महनीय कर्त्तव्यभार को वहन करने की प्रेरणा देते हुए हमारे अन्दर कर्तव्य निर्वाह की शक्ति का संचार करता है। आर्यों! वेद विद्या की महत्ता अपने आर्योचित कर्तव्यों का मूल समझो और **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के अभियान में जुट जाओ। धियो यो नः प्रचोदयात्!!

मो. 7597894991, 9079039088

वेद स्वरूप विचार

● भद्रसेन

अक्षत– गुरुजी जी! ऋग्वेद का बाह्य और अन्तः स्वरूप क्या है?

प्राध्यापक–सहित्य और चारों वेदों में प्रथम स्थान ऋग्वेद का है जिसका प्रादुर्भाव अग्नि ऋषि के माध्यम से हुआ है। ऋग्, ऋक्, ऋच् शब्द स्तुति अर्थ में है। जिसका भाव है–किसी के गुण, परिचय का वर्णन करना। अतः इस वेद में जगत परिचय और जीवन निखार से जुड़ी चीजों, बातों का वर्णन है। यह वर्णन अग्नि, इन्द्र, विष्णु आदि शब्दों को आधार बनाकर किया गया है। मुहावरों के मुख्य शब्द की तरह ये अग्नि आदि शब्द भी प्रकरण के अनुरूप अनेकार्थक हैं। ऋग्वेद पहले दस मण्डलों में और फिर प्रत्येक मण्डल सूक्तों में बटा है। हर सुक्त पाठों की तरह अनेक मन्त्रों में विभाजित होता हैं। यहाँ कुल दस हजार पाँच सौ से अधिक मन्त्र हैं। ये मन्त्र पद्य रूप में मुख्यतः गायत्री, अनुष्टुप आदि सात छन्दों में है। हर छन्द में निश्चित वर्ण और पाद (चरण) होते हैं। जैसे कि गायत्री में आठ–आठ वर्ण की तीन चरण होते हैं और अनुष्टुप में आठ वर्ण वाले चार चरण होते हैं। आगे के छन्द में पूर्व वाले से चार वर्ण अधिक होते हैं।

वत्सल– इसी तरह कुछ परिचय यजुर्वेद की भी जो जाए।

प्रा.– दूसरे क्रम पर यह वेद आता है, यजूस्, यजुर्, में यज्ञ (यज्+न) की तरह यज् धातु है। जो देवपूजा, संगतीकरण और दान अर्थ में है अर्थात जहाँ–जहाँ ऐसी क्रियायें होती हैं। ऐसे ही सर्वहित के लिए किए जाने वाले कार्यों के कारण भी यज्ञ शब्द का प्रयोग होता है। इस वेद में विशेष रूप से विविध यज्ञों के नाम, संक्षिप्त प्रक्रिया की चर्चा है। वैसे ईश्वर, जीव जैसे आध्यात्म विषय भी वर्णित हैं। इस वेद के 18वें अध्याय के 1 से 31 तक के मन्त्रों में... मे यज्ञेन कल्पन्ताम् की टेक है। इन मन्त्रों में पशुओं, अन्नों, व्यवहार की वस्तुओं के नाम स्पष्ट रूप से आए हैं। कल्पन्तम् का अर्थ होता है– चर्चित को अच्छा बनाना। अतः ऋषि दयानन्द ने इनमें पशु विद्या, अन्न=कृषि विज्ञान और ईश्वर, धर्म, सदाचार सम्बद्ध तत्वज्ञान को यज्ञ के अन्तर्गत लिया है।

इस वेद का प्रकाश वायु ऋषि के सहयोग से हुआ। यहाँ चालीस अध्यायों में 1975 मन्त्र हैं। हाँ, सर्वत्र मन्त्र शब्द का अर्थ है– विचार, रहस्य अर्थात जिहन में किसी तत्त्व पर विचार हो, किसी के रहस्य को समझाया गया है।

अखिल– यजुर्वेद के पश्चात किसका क्रम है?

प्रा.– तीसरे क्रम पर सामवेद आता है। वेद में साम शब्द गान के प्रकार के लिए भी आया है और यहाँ इसके बृहत्, तथन्तर जैसे भेदों का भी निर्देश है। सामवेद सम्बद्ध साहित्य में गान विद्या का विस्तृत परिचय प्राप्त होता है। संगीत–एकाग्रता= समाधि के क्रम में निर्मलता, प्रसन्नता, उपासना में भी सहायक है। संगीत के आलाप आदि में प्राण का विशेष योगदान है। अतः साम और प्राण का विशेष सम्बन्ध है। साम शब्द शन्ति, सामाञ्जस्य के भाव को भी व्यक्त करता है।

सामवेद में अग्नि, इन्द्र शब्दों को विशेष आधार बनाया गया है। अतः जहाँ आग्नेय, ऐन्द्र पर्व (प्रकरण) इनमें हैं, वहाँ पवमान पर्व भी है। पवमान सोम का भी पर्याय है। अर्थात यहाँ सोम की विशेष चर्चा है। सामवेद में इन्द्र और सोम का सम्बन्ध औरों की अपेक्षा अधिक वर्णित है। इन्द्र शब्द–ईश्वर, जीव, नेता आदि अनेक अर्थों में आता है। उसी के अनुरूप सोम=भक्ति, वीर्य=संयम=अनुशासन=व्यवस्था का विशेष रूप से संकेत करता है।

इस वेद का प्रादुर्भाव आदित्य (मनु ने रवि नाम दिया है) ऋषि के माध्यम से हुआ है। इसमें पूर्व और उत्तर नाम के दो आर्चिक मुख्य हैं। साम मन्त्रों की संख्या 1875 है, हाँ 15 सौ से भी अधिक ऋग्वेद वाले ही हैं।

सर्वस्व– अच्छा हो अब अथर्ववेद के अभ्युदय से भी अवगत करा दिया जाए।

प्राध्यापक– वेद चर्चा में चौथे क्रम पर अथर्व आता है। अथर्व शब्द विशेषतः न+थर्व से बना है और थर्व=गति, चंचलता, डाँवाडोल स्थिति के अभाव का भी नाम है। अतः शरीर का स्वास्थ्य, समाज की स्थिरता=व्यवस्था, प्रशासन, मन की उदारता बोधक क्रमशः आयुर्वेद, राजनीति, धर्म पुरोहित विज्ञान, विधाओं, तत्त्वों का इस वेद में विशेष वर्णन है। अतएव इस वेद का एक नाम ब्रह्म भी चलता है।

अथर्ववेद में जहाँ अध्यात्म तत्त्वों का भरपूर वर्णन है वहाँ इसकी अपेक्षा लौकिक तत्त्वों का अधिक विवेचन है। इसीलिए दूसरे वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद की भाषा, भावव्यञ्जना अधिक सरल है। इस वेद का प्रकाश अंगिरस ऋषि द्वारा हुआ है। यह वेद पहले बीस काण्डों में बँटा है और फिर प्रत्येक काण्ड सूक्तों में तथा सूक्त मन्त्रों में विभाजित हैं। इसके कुल मन्त्रों की संख्या 5977 है।

हाँ, चारों वेदों में संसार के प्राकृतिक पदार्थों और जीवन के विविध पहलुओं का वर्णन है। यह तत्त्वज्ञान पर्याप्त विस्तृत है। अतः इसके लिए 'वेदोधान' देखिए, जहाँ आपकी कुछ जिज्ञासा शान्त हो सकती है।

अखिलेश– जब हम संसकृत शास्त्रों को पढ़ते हैं, वहाँ सर्वत्र वेद न कह कर कहीं श्रुति नाम है (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः–मनु 2,10) तो कहीं छन्द, ब्रह्म, आगम, आम्नाय, निगम आदि नाम मिलते हैं, ये इतने सारे नाम क्यों हैं?

प्रा.– संस्कृत भाष के शब्द अपने यौगिकपन से अपने स्वारस्य को प्रकट करते हैं। अतः वेद के इन अनेक नामों से वेद के विविध पहलुओं, रूपों, स्तरों, रहस्यों, तत्त्वों, नियमों को अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे कि एक ही व्यक्ति को सम्बन्ध के भेद से पिता, पुत्र, भाई, पति, चाचा आदि कहा जाता है। ऐसे ही इन अनेक नामों से वेद के उस–उस महत्त्व को निर्दिष्ट किया जाता है। यथा श्रुति शब्द प्रारंभ से ही श्रद्धा पूर्वक होने वाली वेद की श्रवण, प्रवचन परम्परा को स्पष्ट करता है। ऐसे ही अन्य नामों से अन्य भाव सामने आते हैं। (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः मनु. 2,10)

निकष–इतिहास की पुस्तकों में तो पढ़ाया जाता है कि वेदों में अग्नि, इन्द्र, विष्णु आदि देवों की स्तुति, प्रार्थना ही है?

प्रा.– यह प्रश्न बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी विशेष चर्चा अगली बैठक में करेंगे, इस समय संक्षेप में इतना ही पर्याप्त होगा, कि वेदों में अग्नि, वरुण, सूर्य आदि पदों को आधार बनाकर सारा वर्णन है। इनको वैदिक व्याख्या में देवता कहते हैं ये प्रकरण के अनुसार भिन्न–भिन्न के वाचक हैं। जैसे कि मुहावरों (आग बबूला होना, आग बरसाना, आग लगाना आदि) का अर्थ, भाव अलग–अलग होता है। ऐसे ही अग्नि शब्द वेद में प्रकरण के अनुरूप अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करता है। ये कहाँ, किसके वाचक है, यही सब से मुख्य बात है। 1

इसका एक सुन्दर समाधान 'वेद की कुञ्जी– प्रथम समुल्लास' में उदाहरण सहित समझाया गया है।

अमित– इस शीर्षक में कुञ्जी शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है?

प्रा.– जैसे कुञ्जी से ताला सरलता से खुल जाता है। ऐसे ही प्रकरण के अनुरूप अग्नि शब्दों के स्वारस्य को लेने पर संगति सरलता से समझ में आ जाती है और तब वेद मन्त्र का भाव भी स्पष्ट हो जाता है।

बी–2, 92/7 शालीमार नगर,
होशियारपुर–146001

श्रावणी उपाकर्म

श्रावणी का पर्व आया, वेद का सन्देश लाया।
सृष्टि के प्रारम्भ में, ऋषियों ने जो ईश्वर से पाया।।

सूर्य के बिन आँख का, व्यवहार कैसे चल सकेगा।
क्या करेंगे नेत्र जो, उनको प्रकाश न मिल सकेगा।।
ऐसा ही पावन प्रकाश, बुद्धि ने वेदों से पाया– श्रावणी का......

उपाकर्म का अर्थ ऋषियों ने सदा स्वाध्याय माना।
स्वाध्याय का भी सदा से, वेद ही पर्याय माना।।
वेद से जो जुड गया, सबका ही जीवन जगमगाया– श्रावणी का......

स्वाहा की स्वर लहरियों में, वेद मन्त्र गूंजते थे।
वनीजन आते नगरों में, गृहस्थ सादर पूजते थे।।
वनस्थों ने चतुर्वर्णी गृहस्थों को पथ दिखाया– श्रावणी का.......

क्रूरता ने शूरता का, रास्ता रोका अकड़ में।(1)
दनुजता दहला गई थी, आ मनुजता की पकड़ में।।
श्रावणी को वेद पथिकों ने कुरानी गर्व ढाया – श्रावणी का.......

{(1) सन् 1939 का हैदराबादसत्याग्रह}

रामनिवास 'गुणग्राहक'
मो. 9079039088

ऋषि-ऋण

● पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय

मैं ने 1898 ई. में आर्य समाज में प्रवेश किया और दीप मालिका के दिन यज्ञोपवीत धारण करके वैदिक धर्म की दीक्षा ली। उस समय मेरी अवस्था 17 वर्ष की थी और मैं गवर्मेण्ट हाईस्कूल अलीगढ़ की मिडिल कक्षा का विद्यार्थी था। जिसको आजकल मैट्रिक कहते हैं उसको उस समय एण्ट्रेस कहते थे। एण्ट्रेस का विद्यार्थी पहली कक्षा का गिना जाता था। मैं दो दर्जे नीचे तीसरे दर्जे में पढ़ता था।

आर्य समाज में प्रवेश मेरे लिये एक अत्यन्त असाधारण घटना थी। मेरी मनोवृत्ति ही बदल गई। मेरा दृष्टिकोण भिन्न हो गया। मैं अपने जीवन को तथा संसार को भिन्न रूप में देखने लगा। उपनिषद् की भाषा में मैं उस समय की अवस्था को इस प्रकार कहूँगा कि-

भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

आर्यसमाज के निरन्तर सम्पर्क और सिद्धान्त ग्रन्थों के परिशीलन से मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि यदि कोई पुरुष आत्मिक और सामाजिक अभिवृद्धि चाहता है तो उसे ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित और आर्यसमाज द्वारा प्रचरित 'वैदिक धर्म' पर चलना चाहिए। मेरी धार्मिक शिक्षा का मौलिक श्रेय श्री छोटेलाल जी भार्गव बी.ए. को है जो उस समय गवर्मेण्ट स्कूल अलीगढ़ में सायंस मास्टर थे। श्री छोटेलाल जी के विषय में जब मैं इस समय सोचता हूँ तो मेरी धारणा होती है कि वे कुशल बुद्धि और असाधारण प्रतिभा के मनुष्य थे। सिद्धान्तों की व्याख्या ऐसी उत्तम रीति से करते थे कि मैंने इस प्रकार की व्याख्या करने वाले बहुत ही कम देखे हैं। उनकी प्रेरणा से अलीगढ़ आर्यसमाज की ओर से 'वैदिक आश्रम' खोला गया और मैं उन दो विद्यार्थियों में से एक था जो अनेक विरोध और रुकावटों के होते हुए भी सब से पहले वैदिक आश्रम के छात्रावास में प्रविष्ट हुए और नियमित रूप से हमको 'सत्यार्थ प्रकाश' का पाठ पढ़ाया जाने लगा।

मेरी प्रकृति जोशीली नहीं है। मेरे मानस-हृदय में तरंगें तो एक कङ्कड़ी भी उत्पन्न कर देती हैं। परन्तु इसमें ज्वार-भाँटे नहीं उठते। मैंने उन्हीं दिनों निश्चय कर लिया था कि व्यक्तिगत जीवन तथा साधारण प्रचार द्वारा ऋषि-ऋण को चुकाना चाहिए।

जब मैं अधिक प्रौढ़ हुआ और संसार चक्र की अन्य दोलायमान अवस्थाओं से गुजरा तो मैंने कभी इस बात को विस्मृत नहीं किया कि मुझे ऋषि दयानन्द का ऋण चुकाना है। क्योंकि मेरी अन्तःस्थ ज्योति को जगाने वाले तो ऋषि दयानन्द ही थे। परन्तु मेरे पास उपकरणों का सर्वथा अभाव रहा। मैं येन केन प्रकारेण आगे बढ़ता गया। परन्तु इंचों की मात्रा से, मीलों या गजों की मात्रा से नहीं। मेरी सदा यह धारणा रही कि जो व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता वह समाज सेवा के सर्वथा अयोग्य है। मेरा अगले जीवन का कार्यक्रम इसी धारणा पर आधारित रहा है।

युवाकाल में मेरी इच्छा हुई कि मद्रास और अमेरिका में वैदिक प्रचारार्थ जाना चाहिए। परन्तु घर का भार और लक्ष्मीदेवी की कोपमयी उपेक्षा। इन दोनों बातों ने मेरी इच्छा को छिन्न-भिन्न कर दिया। मैंने सन्तोष कर लिया कि यदि 'विश्व' को आर्य बनाने का श्रेय मेरे भाग्य में नहीं है तो 'स्व' को आर्य बनाने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। गृह भार को उठाना वैदिक कर्त्तव्य है और लक्ष्मी का कोप तो भाग्य से मिलता है। प्रतिशतक निन्यानवे लक्ष्मी के लाडले भूल-भुलैयों के दलदल में फँसे पाये जाते हैं। अतः मैंने लक्ष्मी को कभी कोसा नहीं। परन्तु विदेश जाने का विचार शिथिल पड़ गया।

मेरा एक विचार और था। विदेशों में उनको जाना चाहिए जो अपनी मास्तिष्क और आचार सम्बन्धी योग्यता से दूसरों को चकित कर सकें। अर्थ और काम के पाश में फँसे हुए सिद्धान्त-ज्ञान-शून्य प्रचारक किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकते।

'न्यास' द्वारा प्रकाशित-(जीवन चक्र- पृ. 399-13)

उपाध्यायजी की कृतियाँ

1. आस्तिकवाद -पृ. 376, मूल्य 200 रुपये
2. हम क्या खाऐं घास या मांस, पृ. 112, मूल्य 40 रुपये
3. सन्ध्या क्यों और कैसे, पृ. 120, मूल्य 45 रुपये
4. ईशोपनिषद् (सरल भाषा-भाष्यसहित), पृ. 96 मूल्य 24 रुपये
5. वेदों पर अश्लीलता का .... (पृष्ट-15)

प्रस्तुति : डॉ. ज्वलन्त कुमार

☞ पृष्ठ 02 का शेष

बोध कथाएँ...

के पास मुसद्दीवाना में जल्दी से भागकर पहुँचा। चौधरी जी पर्याप्त संघर्ष के पश्चात् रकाब से अपना पाँव छुड़ाने में सफल हो गये थे। जोहड़ के कीचड़ में लथपथ थे। उनकी पगड़ी परे तैर रही थी। घोड़ा दूसरी ओर जा रहा था और चौधरी जी कीचड़ में रंगे-रंगाये बाहर आने का प्रयत्न कर रहे थे। तब पता लगा कि वे गुजरात की ज़िला-कचहरी में उपस्थित होने के लिए घर से निकले थे। गुजरात की कचहरी में पहुँचने की बजाय उस जोहड़ में पहुँच गये, क्योंकि घोड़ा वश में नहीं रहा।

यही दशा होती है घोड़े के वश में न रहने से! सुनो, सुनो, सुनो! इस घोड़े (मन) को वश में रखो, नहीं तो भगवान् की कचहरी में पहुँचने के स्थान पर यह आपको पाप के कीचड़ में पहुँचा देगा। पगड़ी अलग उतरेगी, कपड़े अलग खराब होंगे और उधर यदि समय पर नहीं पहुँचे तो कचहरी में मुकद्दमा ख़ारिज हो जाएगा-

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
पार ब्रह्म को पाइये, मन के ही प्रतीत।।
फूल मैं चुनने आया था बाग़े-हयात में

एक थे सज्जन जीवनराम। ये सेठ ज्योतिस्वरूप के पड़ोस में रहते थे-एक झोंपड़े में। उन्हें पता लगा कि सेठ के बहुत-से उत्तम मकान हैं। उनके पास जाकर वे बोले-"अमुक मकान मुझे दे दीजिये, मैं वहाँ निर्धन बच्चों के लिए एक पाठशाला आरम्भ करूँगा। एक निःशुल्क औषधालय बनाऊँगा और प्रतिदिन सत्संग होगा। वहाँ आध्यात्मिक कथाएँ होंगी, यज्ञ होगा। जो भी किराया आप माँगेंगे, मैं दे दूँगा।"

ज्योतिस्वरूप बोले-"तुम तो बहुत अच्छे व्यक्ति हो। इतने श्रेष्ठ काम तुम मेरे मकान में करोगे तो मैं निःशुल्क दूँगा। किराया नहीं लूँगा। तुम मकान को स्वच्छ रखो। ये उत्तम काम करो। मुझे किराये की आवश्यकता नहीं।"

जीवनराम पहुँचे उस मकान में। वहाँ रहने लगे। आरम्भ में उन्होंने मकान को स्वच्छ रखा, परन्तु कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि जीवनराम के कुछ जुआरी मित्र आ गये। पहले ताश शुरू हुई, फिर जुआ खेला जाने लगा। प्रतिदिन जुआ होता, तो शराब भी उड़ने लगी। धीरे-धीरे वह मकान डाकुओं का अड्डा बन गया। हर प्रकार के पाप वहाँ होने लगे। किसी ने ज्योतिस्वरूप से शिकायत की-"सेठ जी! जो मकान आपने यज्ञ और सत्संग के लिए दिया था, वह तो डाकुओं का अड्डा बन गया है!"

ज्योतिस्वरूप बोले-"ऐसी बात है?"

शिकायत करने वाले ने कहा-"जी! मैं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ।"

ज्योतिस्वरूप ने अपने मुनीम को बुलाया; कहा- "जीवनराम से कहो कि मकान खाली कर दे। हमने पाप के लिए वह मकान नहीं दिया था।"

छोटे मुनीम जीवनराम के पास पहुँचे। जीवनराम ने कुछ अनुनय-विनय की। कुछ मुनीम साहब का हाथ गर्म कर दिया। उन्होंने जाकर रिपोर्ट दे दी-"सब ठीक है। किसी ने अनुचित शिकायत कर दी थी।"

अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि सेठ के पास पुनः शिकायत पहुँची। अबके उन्होंने बड़े मुनीम को भेजा। जीवनराम ने बड़े मुनीम की अनुनय-विनय की। उसके पाँव पड़ा। प्रतिज्ञा की कि वह अपना सुधार करेगा। बड़े मुनीम ने सारी रिपोर्ट दे दी। सेठ ज्योतिस्वरूप बोले-"बात बड़ी है, परन्तु यदि यह सुधरना चाहता है, तो उसे कुछ समय देना चाहिए।"

कुछ समय दिया गया। परन्तु फिर शिकायत आई कि जीवनराम के लक्षण पहले से भी बुरे हुए जाते हैं। अबके सेठ ने अपने बेटे को भेजा। जीवनराम ने उसे भी धोखा देने का प्रयत्न किया, परन्तु वह धोखे में नहीं आया। वकील से नोटिस दिला दिया कि "मकान खाली करो।" जीवनराम ने नोटिस लिया ही नहीं। मुकद्दमा हुआ। वारण्ट जारी हुए। पुलिस पहुँची तो जीवनराम ने उसको भी रिश्वत देने का प्रयत्न किया, परन्तु अब कोई भी चाल चली नहीं। रोया-चिल्लाया। अन्त में मकान छोड़ना पड़ा।

यह जीवनराम है आत्मा, ज्योतिस्वरूप है ईश्वर, और मकान है शरीर। इस मकान का कोई किराया नहीं। इसीलिए मिला यह मकान। ज्ञान के द्वारा कर्म, कर्म के द्वारा उपासना और उपासना द्वारा प्रभु का दर्शन करो। उसके स्थान पर बना दिया इसको पापों का अड्डा। तब छोटा मुनीम आया-कोई छोटी बीमारी - छोटी दुर्घटना। बड़ा मुनीम है-तनिक बड़ा रोग। सेठ का लड़का है अधिक भयानक रोग। नोटिस है-हृदय की दुर्बलता, अन्तड़ियों का कार्य न करना, आँखों में मोतियाबिंद उतरना, कानों से कम सुनाई देना। नर्व्स ब्रेकडाउन मुकद्दमा है। अन्तिम रोग वारण्ट है। पुलिस है मृत्यु। वह आ जाय तो फिर ओषधियों की रिश्वत नहीं चलती। तब जीवनराम को यह मकान छोड़ना ही पड़ता है।

मैं फूल चुनने आया था बाग़े-हयात में।
दामन को ख़ार-ज़ार में उलझा के रह गया।।

क्रमशः

वैदिक संस्कृति–संक्षिप्त विवेचन

● शिवनारायण उपाध्याय

वर्तमान काल में सर्वमान्य तथ्य है कि ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तक है। सत्य तो यह है कि चारों वेद ही प्राचीनतम हैं। वेद ज्ञान–विज्ञान के विशाल भण्डार हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' मेरी दृष्टि से इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। वेद में मानव जीवन को श्रेष्ठतम बनाने के लिए कई उपाय भी सुझाये हैं। वेद की शिक्षा को यदि आचरण में स्थान दे दिया जाये तो यह विश्व स्वर्ग की कल्पना को पृथ्वी पर ही साकार रूप दे देगा।

वेद मनुष्यों को किसी संकुचित दायरे में रहना नहीं सिखाता है। ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 53 की छठी ऋचा में कहा गया है कि, **'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।'** अर्थात् हम सच्चे रूप में मननशील मानव बने और अपनी सन्तान को देवता के रूप में जन्म दें। देवता दान देने वाला, ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित तथा ज्ञान का विस्तार करने वाला होता है।

क्या वैदिक संस्कृति पुरुष प्रधान नहीं है? इसका उत्तर है कि वैदिक संस्कृति पुरुष प्रधान नहीं है। वेदों में स्त्री–पुरुष को एक दूसरे का पूरक माना गया है। साथ ही स्त्री को अधिक सम्मानित माना गया है। ऋग्वेद मण्डल 8 सूक्त 33 की ऋचा 19 कहती है।

अधः पश्य स्व मोपरि सन्तरां पादकौ हरः।
मा ते कशप्लको दृशन् स्त्री ही ब्रह्मा बभूविथ।।

सभी जानते हैं कि किसी भी देवयज्ञ में ब्रह्म का पद सर्वोच्च होता है। सम्पूर्ण यज्ञ उसी के आदेशानुसार सम्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार गृहस्थरूपी यज्ञ में स्त्री को ब्रह्मा का स्थान प्राप्त है। गृह का सम्पूर्ण कार्य उसी के आदेशानुसार और उसकी देखरेख में ही सम्पन्न होता है। तभी तो श्रीरामचन्द्र जब माता कौशल्या से वनवास जाने की आज्ञा लेने गए थे तो माता ने कहा था कि यदि पिता ने तुम्हें वनवास जाने का आदेश दिया है तो मैं आदेश दूँगी कि वनवास जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि माता सन्तान के लिए पिता से बड़ी होती है परन्तु जब श्रीरामचन्द्र ने कहा कि पिता के आदेश के साथ इसमें माता कैकयी की भी सम्मति है तो फिर माता कौशल्या ने उन्हें वन में जाने की आज्ञा दे दी। कुछ लोगों का कथन है कि वैदिक संस्कृति में पुंसवन संस्कार में परमात्मा से श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है कन्या जन्म के लिए प्रार्थना नहीं की जाती है।

इस समस्या का समाधान सामवेद मंत्र संख्या 1460 व 1461 में हुआ है। इन मंत्रों के ऋषि वसिष्ठ हैं। कहा जाता है जब वसिष्ठ ने विवाह के समय अपनी पत्नी का हाथ थामा तो कहा **'त्वया वयं धारा उदन्या इव अतिगाहे महि द्विवः'** तेरे साथ मिलकर हम अप्रीतिकर दुर्गुणों से ऐसे तैर जाएँ जैसे पर्वतीय जल धाराओं को हम एक–दूसरे का हाथ पकड़ कर पार करते हैं।

जनीयन्तोन्यग्रः पुत्रीयन्तः सुदानवः।
सरस्वती हवामहे।। सामवेद मंत्र संख्या 1460

(**जनीयन्तः**) स्त्री की चाहना करते हुए (**पुत्रीयन्तः**) और पुत्री की कामना करते हुए (**सुदानवः**) परोपकारी (**अग्रवः**) हम उपासक (न) आज (**सदस्वन्तम्**) सर्वज्ञ परमात्मा को (**हवामहे**) पुकारते हैं।

मंत्र का भावार्थ यह है कि इस संसार सागर को पार करना अत्यन्त कठिन है परन्तु पति–पत्नी मिलकर इसे पार कर सकते हैं। कुछ विद्वान् **'पुत्रीयन्तः'** का अर्थ 'पुत्र की कामना करते हुए' करते हैं जो हास्यास्पद है।

कन्या को स्वयंवर पद्धति से अपने लिए पति चुनने का अधिकार यजुर्वेद में है। हम जानते हैं कि चुनने वाला चुने जाने वाले से बड़ा होता है।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञयुत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञयुत श्वश्र्वा।।
अथर्व.14.1.44

इस मंत्र में तो स्त्री को सम्राज्ञी का पद दिया गया है।

ऋग्वेद मण्डल 5 सूक्त 60 की ऋचा 2 इस प्रकार है–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो
वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रूद्र एषां पृश्निः
सुदिना मरूद्भ्यः।।

अर्थ– समाज में कोई न ज्येष्ठ है और न कोई कनिष्ठ है। सभी बन्धुजन मिल कर ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए कार्य कर विकसित होते हैं। श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान करने वाला, सदैव युवा रहने वाला, दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला रूद्र इनका पिता (पालक) है और इनके मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। ऋग्वेद में, वसुधैव कुटुम्बकम् और 'भवेत्येक नीडम' की बात कही गई है। ऋग्वेद सम्पूर्ण संसार को एक परिवार मानता है। पृथ्वी को एक बड़ा घोंसला मानता है, जिसमें हम सब मिलकर रहते हैं। यजुर्वेद तो प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखने को कहता है।

दृते दृ्ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे।। यजु. 36.18

अर्थ– हम सभी प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखें। सभी प्राणी भी मुझे अपने मित्र की दृष्टि से देखें। कोई भी प्राणी मुझसे किञ्चित भी वैर भाव न रखें। सभी जीवधारी पक्षपात छोड़कर एक–दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। कभी किसी पर भी अन्याय न करें।

फिर 40वें अध्याय में तो वह प्राणी मात्र को अपने तुल्य ही मानता है।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मेवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।
यजु. 40.7

भावार्थ– जो परमात्मा के सहकारी प्राणीमात्र को अपनी आत्मा के तुल्य जानते हैं। एक अद्वितीय परमात्मा के शरण को प्राप्त होते हैं। उनको मोह, शोक और लोभादि कभी प्राप्त नहीं होते हैं।

वेद पुरुषार्थ पर विशेष बल देते हैं भाग्यवाद पर नहीं।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे
पितर परेताः।
उभा राजानौ स्वधयामदन्तौ यमं पश्यासि वरूणं च
देवम्।। अथर्व. 18.1.54

अर्थ– हे मनुष्य। तू (**प्रेहि**) आगे बढ़ (**पूर्याणै**) नगरों को जाने वाले (**पथिभिः**) मार्गों से (**प्रइहि**) आगे बढ़। (**येन**) जिस कर्म से (**ते**) तेरे (**पूर्व**) पहले (**पितर**) पितृगण (**परेता**) पराक्रम से गए हैं। (**उभा**) दोनों (**राजानौ**) शोभायमान (**देवम्**) प्रकाशमान (**यमन्**) यम (**न्यायकारी**) परमात्मा को (**च**) और (**वरूण**) वरूण (**श्रेष्ठ**) जीवात्मा को (**पश्यासि**) तू देख।

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौक कृणुष्व सधस्थे।
तत्र त्वं पितृभि संविदान सं सोमेन
मदस्व स्वधाभि।। अथर्व.10.3.8

भावार्थ– हे विद्वान्। उठ जा, आगे बढ़, आगे को दौड़, चलते हुए जगत् में समाज के बीच घर बना। वहीं तू पितृजनों के साथ मिलता हुआ ऐश्वर्य से मिलकर और असाधारण शक्तियों से मिल कर आनन्द प्राप्त कर।

यजुर्वेद अध्याय 40 के मंत्र संख्या दो में कर्म करते हुए जीने को कहा है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे।।

अर्थ– मनुष्य इस संसार में धर्म युक्त वेदोक्त कर्म करता हुआ–सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करे। ऐसे जीवन जीने वाले व्यक्ति अधर्म युक्त, अवैदिक कर्म नहीं करते। कर्म उनमें लिप्त नहीं होता है। व्यक्ति को सदैव सजग रहकर ही कर्म करना चाहिए।

यो जागार तमृच कामयन्ते, यो जागार
तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि
सख्येन्योकाः।। साम. 1826

अर्थ– जो मनुष्य जागृत रहता है उसको ऋग्वेद चाहता है, जो जागा रहता है उसे सामवेद से वचन प्राप्त होता है। जो जागता है उसे यह सोम कहता है, मैं नियत स्थान वाला तेरी मैत्री में हूँ।

वेद में ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि माना गया है। सृष्टि का उपादन कारण प्रकृति है। निमित्ति कारण जीवात्मा है। ईश्वर प्रकृति और जीवात्मा को संयुक्त कर सृष्टि रचना करने वाला है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं
परिष स्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो
अभिचाक शीति।।
ऋग्वेद 1.164.24

अर्थ– हे मनुष्यों। (**द्वा**) दो (**सुपर्णा**) सुन्दर पंख वाले, गतिशील, चेतन पक्षी (**सयुजा**) सदैव संयुक्त रहने वाले (**सखाया**) मित्रों के समान वर्तमान (**समानम्**) एक ही (**वृक्षम्**) वृक्ष का (**परिषस्वजाते**) आश्रय लेते हैं। (**तयोः**) उनमें से (**अन्यः**) एक (**पिप्पलम्**) उस वृक्ष के पके हुए फल को (**स्वादु**) स्वादुपन से (**अत्ति**) खाता है और (**अन्यः**) दूसरा (**अनश्नत्**) नहीं खाता हुआ (**अभिचाकशीति**) सब ओर से देखता है।

इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र संख्या 1 में कहा गया है–

ईशावास्यमिदं सर्वंयत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधकस्यस्विद्धनम्।।

अर्थ– इस सम्पूर्ण चर और अचर जगत् को परमात्मा से व्याप्त होने वाला मानो। उसके द्वारा दिये गये पदार्थों का त्याग पूर्वक भोग करो। किसी के धन का लालच मत करो। सृष्टि का सम्पूर्ण धन तो सुख स्वरूप परमात्मा का है।

वैदिक संस्कृति में बहुदेववाद को मान्यता नहीं है केवल एक ईश्वर की ही मान्यता वेदों में सिद्ध की गई है।

न द्वित्तीयो न तृतीयश्चतुर्थो ना प्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
अथर्व. 13.4.16 (पर्याय 2)

वह अकेला वर्तमान, न दूसरा, न तीसरा, न चौथा ही कहा जाता है। जो इस अकेले प्रकाशमय वर्तमान परमात्मा को जानता है वही सत्य जानता है।

फिर मंत्र संख्या 17 व 18 में इसी धारणा को विस्तार दिया गया है।

ज्ञान प्राप्ति की दृष्टि से ही शिक्षा को छः वेदांगों में प्रथम स्थान दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् प्रथम वल्ली में इस पर विस्तृत वर्णन है।

ओ३म् शिक्षा व्याख्यास्यामः। वर्णा स्वरः।
मात्राबलम्।
साम सन्तान। इत्युक्तः शिक्षाध्याय।

फिर सम्पूर्ण शिक्षा को 5 भागों में बाँटा गया है।

अथातः संहितायाः उपनिषदं व्याख्यास्यामः
पञ्चस्वधिकरणेषु।
अधिलोकधि ज्योतिषमधि विद्यमधि प्रजनध्यात्मम्।।
तै. उप. 1.3.1

इसके बाद संहिता की उपनिषद का व्याख्यान करते हैं। यह उपनिषद् पाँच भागों में है, लोक के सम्बन्ध में, ज्योतिष के सम्बन्ध में, विद्या के सम्बन्ध में, सन्तान के सम्बन्ध में और शरीर के सम्बन्ध में।

वास्तव में इन पाँच भागों में पूर्ण विद्या का समावेश हो जाता है। **'विद्या ददाति विनयम्'** विद्या से व्यक्ति में नम्रता आ जाती है। विद्या ही हमें नैतिक और अनैतिकता का भेद भी बताती है।

नैतिकता की दृष्टि से आगे कहा गया है–**सत्यं वद। धर्मं चर। स्वादध्यायन्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय**

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

महान बनो

● नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

मनुष्य अपने जीवन में महान कैसे बन सकता है इस यक्ष प्रश्न का उत्तर हमें वेद ज्ञान से मिलता है। ऋग्वेद का मंत्र "अयमुष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः।" अर्थात् सुमहान वही है जो 1. होता 2. मन्द्रः 3. मनुषः 4. यह्वः 5. अग्निः इन गुणों से परिपूर्ण है। इन गुणों की चर्चा से पूर्व हमें महानता के सामान्य अर्थ और कसौटी को समझना होगा।

सामान्य तौर पर बड़े होने को ही महान होना समझ लिया जाता है। अंग्रेज़ी में दोनों को समानार्थक माना गया है और ग्रेट का अर्थ बड़े और महान दोनों से किया जाता है। भाषाओं की जननी और विश्व की सबसे प्राचीन समृद्ध और वैज्ञानिक भाषा संस्कृत और उसके निकटतम उसी देवनागरी लिपि से बनी हमारी मातृभाषा हिन्दी इस अंग्रेज़ी से कहीं अधिक व्यापक समृद्ध होने के कारण इस बड़े और महान होने के अन्तर को स्पष्ट कर देती है। वेद की दृष्टि में तो ना कोई बड़ा है ना कोई छोटा। धन ऐश्वर्य से बड़ा होने पर कोई महान नहीं हो सकता। महानता की कसौटी पर समय और समाज मनुष्य को कसता है। कोई भी व्यक्ति यदि स्वयं को खुद ही स्वयंभु बनकर महान घोषित कर देता है तो वह महान नहीं कहलाता अपितु वह तो आत्म मुग्धता से ग्रस्त एक अहंकारी मात्र है और अहंकार या अभिमान एक ऐसा अवगुण है जो किसी गुण से पैदा होता है और फिर सबसे पहले उसी गुण को खा जाता है। जैसे ज्ञान का अभिमान ही सबसे बड़ी अज्ञानता है। अर्थात् वही मनुष्य महान है जिसे समय और समाज महान कहे ना कि वह जो खुद को महान घोषित कर दे।

आइये अब महानता के पाँचों लक्षणों पर चर्चा करते हैं। प्रथम लक्षण है **होता** जिसका अर्थ है वह याज्ञिक जो अग्निष्ठ होकर ज्योति वा प्रकाश का प्रादुर्भाव करता है। **होता** एक कर्म कुशल कर्मयोगी होता है और प्रत्येक संस्था मे **होता** के होने से ही सब कुछ होता है और नहीं होने से कुछ नहीं होता। यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म करते हुए समय की आवश्यकताओं के अनुसार दिव्यताओं का सृजन सत्कार संगतिकरण करता हुआ जब सर्वस्व समर्पित कर देता है तब वह **होता** के रूप में जाना जाता है। **होता** केवल आहवाता यानी आह्वान करने वाला ही नहीं अपितु वह परमपिता परमेश्वर को अंगीकार करने वाला आदाता और समाज, राष्ट्र, विश्व के हित के लिए सर्वस्व दान करने वाला दाता भी होता है।

सुमहानता दूसरा लक्षण मन्द्रः अर्थात् आनन्दवृति वाला होना। आनन्द और सुख में अन्तर है, आनन्द आत्मा का भोजन है जबकि सुख मनुष्य की मनःस्थिति पर निर्भर करता है। स्थिति अनुकूल होने पर सुख प्रतिकूल होने पर दुःख होता है। जबकि आनन्द में मनुष्य का आत्मा आनन्द स्वरूप परमपिता परमेश्वर के आनन्द में निमग्न होकर नर्तन करने लगता है। इसे ही उपासना भी कहते हैं। आनन्द की स्थिति में साधक साधना करते हुए साध्य देव ईश्वर को समर्पित होकर एकरूप हो जाता है। सामान्य अर्थ में जो मनुष्य अपने को सौंपे गए नियत कार्य में पूरी रुचि लेकर उसमें होकर जय-पराजय के भाव से मुक्त स्थितप्रज्ञ होकर प्रसन्नतापूर्वक कुशलता से उस कार्य को करता है वही आनन्द वृति वाला होता है।

महानता का तीसरा लक्षण है मनुषः अर्थात् मनुष्यता। वेद भगवान ने मनुर्भव कहकर हमें मनुष्य बनने का आदेश दिया। इससे स्पष्ट है कि मानव योनि में जन्म लेने के उपरांत भी मनुष्योचित गुणों को धारण करके ही हम मनुष्य बन सकते हैं। क्रान्तदर्शी देव दयानन्द ने मनुष्य को परिभाषित करते हुए आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखा "मनुष्य वह जो मननशील, विचारवान हो, सभी से स्वआत्मवत यथायोग्य व्यवहार करता हुआ निर्बल धर्मात्माओं का संरक्षण और दुष्टों को दंड देकर परोपकार के कार्य किया करे।" अब हमें आत्मविवेचन करते हुए खुद को इस कसौटी पर कसना है कि क्या हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं या फिर मनुष्य रूपेण मृगाश्चरंति हम मनुष्य के रूप में पशु बनकर फिर रहे हैं। मनुष्यता हम मनुष्यों का धर्म है यदि हम अपने धर्म मनुष्यता की रक्षा करेंगे तो निश्चित रूप से रक्षित धर्म हमारी रक्षा करेगा और यदि हम अपने धर्म मनुष्यता को मार देंगे तो यही मरा हुआ हमारा धर्म हमें मार देगा। यदि हम महान बनना चाहते हैं तो पहले हमें मनुष्य बनना होगा।

सुमहानता का चौथा लक्षण है यह्वः अर्थात् पवित्र विचार और विशाल हृदयता लिए महानता। इसीलिए ब्रह्मयज्ञ में साधक प्रार्थना करता है "ओं भूः पुनातु शिरसि" और "ओं महः पुनातु हृदये"। वस्तुतः महान वही है जिसके विचार महान हों, दिल महान हो और कर्म महान हों।

महानता का पांचवां लक्षण है अग्निः अर्थात् अग्निस्वरूप परमेश्वर की ज्योति से ज्योतिर्मय अन्तरात्मा। महान वही है जिसके अन्दर आग है, प्रकाश है, ताप है, उत्साह है और जो स्वयं रोशन है वही दूसरों को रोशनी दे सकता है। मनुष्य का आत्मा सत्य का आग्रही है और सर्वान्तर्यामी परमेश्वर सत्यस्वरूप सर्वज्ञ हमारी आत्मा में विराजमान हमारे सच्चे मित्र होकर सदैव हमें सत्य धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। महान बनने के लिए आवश्यक है हम अग्निस्वरूप अन्तर्यामी ईश्वर से स्वयं प्रकाशित हों और आत्मा में उद्बुध अग्नि में यश अपयश की चिन्ता किए बिना आनन्दमय होकर सद्कर्मों की आहुति देते हुए सच्चे **होता** बनें तभी हम महान बन सकते हैं।

602 जी. एच. 53
सै. 20 पंचकूला
मो. 09467608686

☞ पृष्ठ 06 का शेष

वैदिक संस्कृति-संक्षिप्त ...

प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।।

तै. उप. 1.11.1

फिर नैतिकता के इसी विषय में आगे इस प्रकार विस्तार दिया है-

मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्य नवद्यानि कर्माणि तानि सेवित व्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

वैदिक संस्कृति में दान की बड़ी महत्ता है। कहा गया है-**श्रद्धा देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रियादेयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।** तै. उप. 1.11.3

दान श्रद्धा पूर्वक देना चाहिए। अश्रद्धा से भी दान देना चाहिए। लाभ में से दान देना चाहिए। लज्जा से भी दान देना चाहिए। समाज के भय से भी दान देना चाहिए। दान का फल मिलेगा यह सोच कर भी दान देना चाहिए। उपनिषद में कहा गया है कि हम सदैव सत्य ही बोलें। **'सत्यमैवजयते नानृम्।।'** सत्य की ही जीत होती है असत्य की नहीं।

फिर अथर्ववेद काण्ड 3 सूक्त 30 में परिवार को श्रेष्ठ बनाने की विधि भी बताई गई। इस सूक्त में केवल सात मंत्र है जिन्हें आचरण में स्थान देने पर परिवार संगठित रहता है।

ऋग्वेद का अंतिम सूक्त संगठन सूक्त कहलाता है। समाज को जोड़े रखने में इन मंत्रों से बड़ी सहायता मिलती है। ये केवल 4 मंत्र हैं। विषय विस्तृत हो जाने से यहाँ हम केवल 2 मंत्र दे रहे हैं।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

ऋ. 10.191.2

अर्थ- संग चलो, संगति पूर्वक बोलो, तुम्हारे मन संगती पूर्वक विचार करें। जिस प्रकार विद्वान् एक मत होते हुए भाषा को प्राप्त करते हैं।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

ऋ. 10.191.3

अर्थ-तुम्हारी मन्त्रणा समान हो, मन्त्रणा करने की सभा समान हो, मन समान हो, तुम्हारे लिए समान विचार को मन्त्रणा युक्त करता हूँ। तुम्हें समान यज्ञीय पदार्थ से आदान-प्रदान करता हूँ।

संस्कार वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था। संस्कार का अर्थ है व्यक्ति का पूर्ण परिवर्तन। उसके अन्दर से दुर्गुणों को निकाल कर सद्गुणों का आधान कर देना। इस विषय पर डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की पुस्तक सर्वश्रेष्ठ है। उसमें संस्कारों की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। संस्कार 16 हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्टि। संस्कार द्वारा ही श्रेष्ठ मानव बन जाता है। फिर सामाजिक विकास के लिए वर्ण व्यवस्था का बड़ा महत्त्व है। समाज के विकास के लिए गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर समाज को चार भागों में विभक्त किया गया है। वर्ण व्यवस्था एक खुली व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपना वर्ण बदलने की पूरी स्वतंत्रता है।

ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृत।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रोऽअजायत।।

यजु. 31.11

अर्थात् ब्राह्मण बुद्धिजीवी व्यक्ति होता है। क्षत्रिय शारीरिक दृष्टि से सबल होकर समाज की रक्षा करता है। वैश्य समाज भरण-पोषण का उत्तरदायित्व निभाता है और शूद्र तीनों कर्णों की सेवा करता है। मानव के व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए आश्रम व्यवस्था से अच्छी कोई व्यवस्था नहीं है। इसमें मनुष्य की आयु 100 वर्ष की मान कर उसके चार भाग किए हैं। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम कहलाता है। इसमें बालक 5 वर्ष की आयु तक माता के द्वारा, 6 वर्ष से 8 वर्ष की आयु तक पिता के द्वारा शिक्षित किया जाता है। फिर 8 वर्ष की आयु के बाद शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी गुरुकुल में भेज दिया जाता है। जहाँ वह कम से कम 16 वर्ष तक अध्ययन करता है। ब्रह्मचर्य द्वारा शरीर को मजबूत बनाता है। फिर 25 वर्ष की आयु में समावर्तन संस्कार के बाद विवाह कर गृहस्थ बनता है। धर्म पूर्वक अर्थ प्राप्त कर परिवार का उत्तर दायित्व निभाता है। 50 वर्ष की आयु के बाद गृहस्थ त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इसमें पुनः शास्त्रों का अध्ययन कर योग साधन करता है। 75 वर्ष की आयु हो जाने पर सन्यासी बन कर देश में घूम-घूम कर धर्म प्रचार करता है।

संक्षेप में यही वैदिक संस्कृति है। इतिशम्।

शास्त्री नगर, दादाबाड़ी-कोटा
राजस्थान

यज्ञ एवं आकाश मंडल (ध्वनि)

● डॉ. रोचना भारती

भौतिक दृष्टि से ध्वनि या शब्द, आकाश का गुण माना जाता है। दार्शनिकों ने इसके लिये मात्र **'शब्द'** का ही प्रयोग किया है। **'ध्वनि'** शब्द विभिन्न शास्त्रों में विशिष्ट अर्थों में रूढ़ हो गया है। व्याकरण सहित शास्त्र में यह व्यंजक शब्द का वाचक है।

पाणिनीय शिक्षा में श्लोक है–

आत्मा बुध्या समीत्यार्थ्यान् मौनो युक्ते विवक्षया।
सः मनस्तु उरशिचरन् मन्दं जनयते स्वरम्।।

(अर्थात् जब आत्मा, बुद्धि और मन मिलते हैं तब बोलने की इच्छा से वायु गरम होकर उच्चारण स्थान पर जाकर मन्द स्वर उत्पन्न करती है।)

महर्षि पाणिनी के अनुसार, शब्द को कर्णेन्द्रिय के द्वारा सुना जाता है, बुद्धि से इसका ग्रहण होता है तथा यह प्रयोग से प्रकट होता है और आकाश इसका आश्रय स्थल है–

श्रोत्रोपलब्धिः बुद्धिर्निग्राह्यः
प्रयोगेणाभिज्वलितः आकाश देशः शब्दः।

(वर्णोच्चारण शिक्षा)

वैदिक कोश निघण्टु में – **आकाश गुणः शब्दः।** – 14.4 – कहा गया है तथा अंतरिक्ष के 16 नामों का उल्लेख है जिनमें एक 'आकाश' भी है–

वियत् धन्व, आकाशम्, आपः, अध्वा, पुष्करम्
सगरः, समुद्रः,
अध्वरम्, अम्बरम्, व्योम, बर्हिः, अंतरिक्ष, भूः,
स्वयंभूः आदि।

–निघण्टु– 1.3

(पाणिनीय धातु पाठ, भ्वादि एवं दिवादि गण) इस बात से **'आकाश'** शब्द सिद्ध होता है–

आ समन्तात्काशन्ते दीप्यन्ते
सूर्यादयोऽत्र।

(जहां सूर्यादि चमकते हैं, वह आकाश है।) भौतिक दृष्टि से भी ध्वनि या शब्द, आकाश का गुण माना जाता है। शब्द एक समुद्र की भांति ध्वनि रूप में आकाश में भरा है। प्रत्येक गति ध्वनि में एक कम्पन पैदा करती है, यही वर्णमाला है और ये वर्ण मिलकर शब्द तथा उससे भाषा बनती है। **'महर्षि पतंजलि'** ने कहा था– पदार्थ की बोधक शक्ति ही ध्वनि है। अर्थ का ज्ञान कराने के उपरान्त शब्द नष्ट नहीं होता। वह पानी की तरंगों की भांति सारे ब्रमाण्ड में फैल जाता है और धीरे–धीरे फिर ध्वनि का मूल रूप पा जाता है।

अमर् कोशकार ने भी व्योमवर्ग के अन्तर्गत द्यौः, दिव्, अभ्रम्, नभः,

गगनम्, अनन्तम्, सुखर्त्मन, खम्, विष्णुपदम् और विहायम्

को भी 'आकाश' के 16 नामों से गिनाया है। – अमरकोश – 2.2

वायु मण्डल की अपेक्षा जलमण्डल, ध्वनि का तीव्र वाहक है।

जब कोई शब्द उत्पन्न होता है तो सारे जगत् में फैल जाता है, यह धारणा एक रहस्य थी। सन् 1920 के करीब इटली के मार्कोनी ने कहा कि शब्द भी प्रकाश की तरह 1,886000 मील प्रति सेकेंड के वेग से आकाश में चलता है। अब रेडियो, दूरदर्शन, दूरभाष आदि पर हम पृथ्वी के हर भाग से कुछ सेकेण्ड में शब्द सुन सकते हैं। मार्कोनी के इस काम ने इस कथन को स्पष्ट कर दिया है कि– **"शब्द आकाश का गुण है।"**

ऐतरेय आदि उपनिषदों में पंच महाभूतों की गणना क्रम में अंतिम आकाश को पंचम महाभूत बताया गया है। उपनिषद् का वचन है–

पृथिव्या च स्तेजो वायुराकाशेति भूतानि। – ऐ.उ. 3.3

आकाश रूपरहित वायु, विद्युत आदि का मातृभूत केन्द्र है। यह व्यापक होने से सभी का आश्रय है।

वेद में प्रकाश के लिये कहा है–

"नभो न रूपं अरुषं वसानः।"

(आकाश रूपवान नहीं है अपितु अन्य पदार्थों का आच्छादक, निवासक है।)

आकाश का गुण बताते हुए कहा गया है–

"शब्द गुण आकाशं।" – तर्क संग्रह

(आकाश गुणवान शब्दवान है।)

जब शब्द किया जाता है तो इसी आकाश में स्थित होता है। समस्त प्राणियों के शब्दों की ध्वनियों का आधार आकाश है। आकाश की यह क्षमता ही दूरस्थ व्यक्ति को सन्निकटता प्रदान करती है, ज्ञान परंपरा का आकाश ही माध्यम है। ज्ञान के आधार शब्द एक स्थान से दूसरे स्थान तक जो गृहीत होते हैं तो वे आकाश की इस क्षमता से ही पहुँच जाते हैं।

शोर का शाब्दिक अर्थ है, अनावश्यक ध्वनि जो हमारे मन मस्तिष्क को अनावश्यक रूप से परेशान कर देता है।शोर साधारणतया कर्ण कठोर होता है और कर्णप्रिय हो तो मधुर संगीत बन जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि किसी भी वस्तु के कंपन से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा को कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु कंपन करते हुए कुछ न कुछ ध्वनि पैदा करती हैं। किंतु कुछ को हम सुन पाते है कुछ को नहीं। हम केवल 20 से 20,000 तक फ्रीक्केंसी के कंपन को ही सुन सकते हैं। इसके ऊपर या नीचे के कंपन को ग्रहण करने की क्षमता हम में नहीं है, किन्तु यंत्रों की सफलता से सुन सकते है।

शब्द की अनेक प्रकार की सृष्टि होने से वह अनेक का है। शब्द की व्युत्पत्ति है–

शप्ने अनेन इति शब्दः संस्कृता वा–।

जिसके द्वारा शपन हो, आकृष्ट हो, आव्हान हो, वह शब्द है, शुद्ध की हुई वाणी शब्द है। शब्दों का प्रयोग कर्ता साधु शब्द प्रयुक्त करे, प्रिय शब्द करे, सुसंस्कृत शब्द करे इसका ध्यान भी अनावश्यक है। शब्द करने पर ध्वनि होती है और वह ध्वनि व्यक्त, अव्यक्त दोनों रूपों की हो सकती है, प्राकृतिक रूप से किसी प्रकार की हलचल जैसे बिजली का कड़कना, नदी का बहना, वायु वेग से उत्पन्न आँधी या तूफान या वर्षा आदि के कारण, प्राणियों द्वारा विभिन्न आवाजें तथा मानव द्वारा बनाए गए उपकरणों के कार्य करने की आवाजें ये सामान्य प्रक्रिया हैं, अतः ये सुखद और कोलाहल वाली भी संभव है।

ध्वनि कम या अधिक हो सकती है, अधिक आवाज वाली तीव्र ध्वनि जो कानों को अप्रिय लगे वह शोर की सीमा में आ जाती है, जो ध्वनि प्रदूषण का कारण है।

शोर की परिभाषा की जाए तो यही कहा जा सकता है कि यह एक अनचाही ध्वनि है, जिससे मानव विचलित हो जाता है, बाधा अनुभव करता है तथा तिलमिला कर तनाव में आ जाता है।

ध्वनि रहित संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ध्वनि की तरंगें हमारे कर्णपट से टकराकर मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। जो कर्णप्रिय होती है उसे ध्वनि तथा जो कर्णकटु होती हैं उसे शोर कहते हैं। शोर पर शोध कर रहे संसार के सभी वैज्ञानिकों का एक ही निष्कर्ष है कि यह स्वास्थ्य का शत्रु है। इसका न केवल कानों पर किन्तु समग्र शरीर पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस युग में शोर से बच पाना संभव नहीं दिखता। कल–कारखानों का शोर, सड़कों पर वाहनों का कोलाहल पूर्ण शोर, बिजली न होने पर जनरेटरों का शोर, यन्त्रों–उपकरणों से उपजने वाला शोर तथा निरर्थक वार्तालाप, गाली–गलौच आदि से होने वाला शोर आज के युग की पहचान बन गया है।

कोलाहल = शोर वाली ध्वनि का तात्पर्य है अवांछित ध्वनि, अवांछित स्वर, अवांछित कथन। सुखद ध्वनि का तात्पर्य है मानसिक आल्हादप्रद आवाज (सांत्वना) अभीष्ट सिद्धि देने वाली वांछित ध्वनि। शोर कही जाने वाली ध्वनि **'प्रदूषण'** है, विद्वानों की भाषा में वह 'राव' है। अवांछित ध्वनि से प्रयोक्ता को असुविधा न हो पर सुनने वाले को अवश्य कष्टदायक होती है। इसका प्रभाव व्यक्ति की कार्यक्षमता पर पड़ता है, इसके लिये चिंतकों ने जो आंकड़े जोड़े हैं, वे इस प्रकार हैं–

"शोर, हाईड्रोजन बम से भी अधिक घातक है। इनमें अंतर केवल सहसा और निरंतरता का है। 190 डेसिबल का शोर, स्टील गर्डर के रिबेट तोड़ सकता है। आदमी, 150 डेसिबल के शोर को तनिक भी सहन नहीं कर सकता। तीव्र दर्द का शोर, 130 डेसिबल होता है। हवाई जहाज की उड़ान का शोर, 120 डेसिबल, कार–स्कूटर–बसों का शोर 120, घास या खेती की बहती हवा का 10–15 डेसिबल होता है। स्वास्थ्यकर शोर (ध्वनि), जिसे सामान्य आवाज में की गई बातचीत कहा जाता सकता है सिर्फ 30 डेसिबल होता है। सतत शोर में काम करने वाले लोग, चिड़चिड़े और असामाजिक हो जाते हैं।

विज्ञान के अनुसार ध्वनि स्तर को डेसिबल में नापा जाता है। 20 डेसिबल से अधिक शोर को ध्वनि प्रदूषण माना जाता है, परन्तु आज शहरों में 40 डेसिबल से अधिक शोर होता है। वेद में कहा है–

वाचं वदतु भद्रया वाचं वदतु शान्तिवाम्। – अथर्व. 5.18.1

(हम तीव्र ध्वनि से बचें तथा सामान्य ध्वनि में ही आपस में वार्तालाप करें।) और अथर्ववेद के 20.127.14 मन्त्र में कहा है कभी, भी ऊँची आवाज में न बोलें।

दूषित ध्वनि को अन्य पदार्थों की भाँति शुद्ध करना संभव नहीं है। ध्वनि के शोधन का तात्पर्य है– तीव्रता से मंद्रता में बदलना, ध्वनि को संतुलित करना। ध्वनि को संतुलित करने के लिये वेद में मन्त्र है–

सं घोषः श्रृवे वमैरमित्रैर्जहीन्येष्वनि तपिष्ठाम्।

वृश्चेमधस्ताद्विरुजा सहस्व जहि मघवन्नन्धयस्व।। – ऋग्वेद 3.30.16

ऋग्वेद के इस मन्त्र का अर्थ करते हुए भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मन्त्र के भावार्थ में यज्ञ द्वारा ध्वनि प्रदूषण से बचने का संकेत किया है। भावार्थ की पंक्तियाँ हैं– जो अग्नि में सुगंधि आदि पदार्थों को होमते हैं, अर्पण करते हैं वे रोग और कष्ट के शब्दों के पीड्यमान नहीं होते।

ध्वनि–चिकित्सा– यज्ञ की अग्नि के धूम्र से जिस तरह रोग दूर होते हैं उसी तरह वेद मन्त्रों की ध्वनि के साथ करने से उसके द्वारा निकलने वाली गैस से, ओंकार की ध्वनि से, उद्‌गीथ प्राणायाम से हृदय और मस्तिष्क के तन्तु झंकृत होकर रक्त संचालन शुद्ध और अबाधित होता है और इस तरह शुद्ध रक्त संचालन से मानसिक, बौद्धिक क्षमता बढ़ती है। जिस तरह अल्ट्रासानिक वेव्स से दर्द दूर किया जाता है, क्योंकि इससे भी रक्त संचालन ठीक होकर स्नायुओं को शक्ति मिलती है। इस तरह ध्वनि को यज्ञ के द्वारा शुद्ध किया जा सकता है तथा सस्वर मन्त्र–पाठ ध्वनि दोष के प्रदूषण को भी दूर करता है।

महर्षि दयानन्द की इन पंक्तियों से

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

वेदों में कोई लौकिक इतिहास नहीं

● खुशहाल चन्द्र आर्य

वेदों के अनेक पदों से यह भ्रम होता है कि उनमें ऐतिहासिक स्त्री–पुरुषों, ऋषि–मुनियों, नगरों, नदियों, पर्वतों के नाम हैं जिन्हें देखकर प्रायः विद्वान् कह देते हैं कि वेदों में लौकिक इतिहास है। पाश्चात्य संस्कृतज्ञ ही नहीं वेदों को स्वतः प्रमाण मानने वाले भारतीय वेद भाष्यकार सायणाचार्य आदि भी वेदों में लौकिक इतिहास को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसा वेद के शब्दों को रूढ़ि मान बैठने से होता है जब कि वास्तव में वे सभी आचार्यों के मत में यौगिक हैं। कालान्तर में उनके अर्थ विशेष में सीमित हो जाने पर वे रूढ़ होने लगे। वेदों में अनित्य इतिहास अर्थात् किसी व्यक्ति या जाति विशेष का उल्लेख नहीं है। ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव मानव उत्पत्ति के साथ ही होता है, अतः उसमें मानव इतिहास नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके पूर्व मानव उत्पत्ति नहीं होने से इतिहास सृजित ही नहीं हुआ था। सृष्टि के आदि में जब ज्ञान का एकमात्र आधर वेद ही था और मनुष्यों के व्यवहार की एकमात्र भाषा वैदिक भाषा थी, तब मनुष्यों द्वारा रखे गये पदार्थों के नाम वैदिक नामों से भिन्न कैसे हो सकते थे।

इस विषय में मनु महाराज लिखते हैं कि : –

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्–पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादो पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।

(मनु. 2/22)

सृष्टि के आदि में ज्ञान देते समय परमेश्वर ने सब पदार्थों के नाम, कर्म आदि बता दिये। उन्हीं नामों का लोग प्रयोग करने लगे। यौगिक प्रक्रियानुसार वैदिक शब्दों के भिन्न–भिन्न अर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से लोक में नाम आये, लोक से वेद में नहीं गये। वेद का इन ऐतिहासिक व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद में लौकिक इतिहास मानने पर वेद को अनित्य मानना पड़ेगा, इससे ईश्वर में भी पक्षपात की सिद्धि होगी। यौगिक प्रक्रिया अनुसार अर्थ होने पर वेद का कोई भी शब्द व्यक्ति या स्थान विशेष का वाचक नहीं रहता। जहाँ ऐसा होता है, वस्तुतः वहाँ प्राकृतिक जगत् के कारण तथा कार्यरूप तत्त्वों का औपचारिक व अलंकारिक वर्णन होता है। इस विषय में मीमांसा भाष्यकार शबर स्वामी लिखते हैं "यह इतिहास जैसा प्रतीत होता है (वास्तव में है नहीं) यदि इतिहास माना जाये तो वेद को सादि अथवा अनित्य मानना पड़ेगा। परन्तु ऐसा नहीं है।"

वेदों में लौकिक इतिहास लेशमात्र भी नहीं है : – इस तथ्य को स्थापित करने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को जाता है। वेद में अर्जुन, द्रौपदी, राम, कृष्ण, सीता आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों के नाम, अयोध्या नगर आदि नाम अवश्य पाये जाते हैं, परन्तु वेद में इन लौकिक नामों से किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। वेद के सभी शब्द यौगिक हैं, आदिकाल में संस्कृत के समस्त नामपद यौगिक अर्थात् धातुज माने जाते थे। धात्विक अर्थों के अनुसार प्रकरणानुसार इनका अर्थ भिन्न हो जाता है।

उदाहरणार्थ : – **"यो वायुना यजति गोमतीषु"** (ऋ. 4/21/4) अर्थात् जो वायु द्वारा गोमती में होम करता है।

"सरस्वती यां पितरो हवन्ते" (ऋ. 10/16/9) अर्थात् उस सरस्वती को जिसमें पितर हवन करते हैं।

उपर्युक्त ऋग्वेद के दोनों मन्त्रों में गोमती और सरस्वती नदियों के नाम नहीं हैं, अपितु यज्ञ और हवन से सम्बन्ध रखने वाले नाम हैं। इसलिए स्पष्ट ही वे किरण के बोधक हैं।

अम्बे, अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभदिकां काम्पीलवासिनीम्।।

(यजु. 23/18)

इस मन्त्र में वर्णित अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों महाभारत के काशीराज की कन्याएँ नहीं हैं, जिन्हें भाष्म उठा ले गये थे। अपितु यहाँ अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका माता, दादी और परदादी के वाचक हैं।

वैदिक काल में महराज मनु के वंशजों ने सरयू नदी के तट पर अयोध्या नगरी का निर्माण किया था, वेद के शब्द से ही उसका नाम रखा था।

"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।"

(अथर्व. 10/2/31, 32)

इस मन्त्र में शरीर को ही देवताओं की नगरी बताया है जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार हैं।

नवद्वारे पुरे देही (गीता) अर्थात् जिसमें देही (आत्मा) निवास करता है। इससे ज्ञात होता है कि वेदादि शास्त्रों में शरीर रूपी नगरी का नाम अयोध्या है।

"कृष्णा याः पुत्रोऽर्जुन"

अथर्व. 13/3/26

वेद के इस मन्त्र में अर्जुन को द्रौपदी (कृष्णा) का पुत्र बताया है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार **"रात्रिर्वैकृष्णा, असावादित्यस्तस्या वत्सोऽर्जुनः"**

यहाँ वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों में कृष्णा (द्रौपदी) नाम रात्रि का है और उससे उत्पन्न होने के कारण आदित्य अथवा दिन (अर्जुन) उसका पुत्र है।

इस प्रकार यहाँ द्रौपदी (रात्रि) और अर्जुन (दिन) को महाभारत की द्रौपदी और अर्जुन का वाचक नहीं माना जा सकता।

उपयुक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि वेद में अनित्य इतिहास अर्थात् किसी व्यक्ति या जाति विशेष का उल्लेख नहीं है। जिस वेदार्थ से वेद में लौकिक इतिहास का संकेत मिलेगा वह वेद की मूल भावना का द्योतक होगा। वेद से भिन्न अन्य धार्मिक ग्रन्थों में लौकिक इतिहास, भूगोल पाया जाता है। इसलिए उन्हें ईश्वरीय रचना नहीं कहा जा सकता है। उदारणार्थ :–

बाइबल–बाबुल के राजा नबूखुद नजर के राज्य के उन्नीसवें बरस के पांचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दन निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरूसलम में आया और हर एक बड़े घर को जला दिया। (तौ. रा. प. 25/ आ. 08–10)

कुरान–जब युसूफ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे! मैंने एक स्वप्न देखा। (म. 3/सि. 12/सू. 12/आ. 4–59)

हमने इस कुरान को अरबी में नाजिल किया है, ताकि तुम समझ सको।

(म. 3/सि. 13/ सू. 13/ आ. 37, 40) (सूरते यूसुफ आ. 1)

दूसरी आयत से लगता है कि खुद का कुरान उतारने का मुख्य उद्देश्य केवल अरबवासियों का सुधार करना था। अरबी भाषा निश्चित रूप से एक देश विशेष की भाषा है। देश–विदेश की भाषा में ईश्वरीय ज्ञान देने से ईश्वर पर पक्षपात का आरोप लग सकता है। परन्तु न्यायकारी परम पिता परमेश्वर ने वेद रूपी ज्ञान संस्कृत भाषा में प्रदान किया जो मूलरूप से सब की भाषा थी।

बाइबल और कुरान में लौकिक इतिहास के अनेक उदाहरण मिलते हैं जब कि हम कह सकते हैं कि वेदों में लौकिक इतिहास नहीं है।

यहाँ यह बात समझने की है कि इस लेख में रूढ़ और यौगिक शब्द कई बार आये हैं। इनके क्या अर्थ हैं यह हमको जानना उचित है। रूढ़ या रूढ़ि शब्द का अर्थ है, जैसा शब्द है उसका वैसा ही अर्थ लगा लेना और यौगिक शब्द का अर्थ होता है, उसके आगे–पीछे के प्रकरणानुसार अर्थ लगाना जिसके काफी अर्थ निकल सकते हैं। वेदों में अधिकतर यौगिक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। उनका भाष्यकारों ने रूढ़ अर्थ लगा लिया, इसी से अर्थ का अनर्थ हुआ है।

180 महात्मा गान्धी रोड (दो तल्ला),
कोलकत्ता–700007
मो.9830135794

☞ *पृष्ठ 08 का शेष*

यज्ञ एवं आकाश ...

स्पष्ट है कि यज्ञ में डाली हुई आहुतियों तथा मन्त्रोच्चार से व्यक्ति रोग से मुक्त होता है साथ ही दूषित ध्वनि और शब्दों से भी दुखी नहीं होता। दूषित = अपशब्दों का प्रयोग भी नहीं करता। यज्ञ करने वाले, यज्ञीय जीवन में रहने वाले व्यक्ति कभी भी तीव्र ध्वनियों का प्रयोग नहीं करते। उनके बुद्धि तत्व में मन्त्रों की मंद्रता, मननत्व से प्रेरक होती है, जो कष्टदायी शब्दों से दूर रखती है। इस प्रकार यज्ञ, शब्द की दूषितता को दूर कर आकाश मण्डल को शुद्ध पवित्र करने में सक्षम रहता है।

शब्द कभी समाप्त नहीं होता, अतः इसे **'शब्द ब्रह्म'** कहा गया है। जो कुछ सोचा अथवा बोला जाता है, वह तुरन्त समाप्त नहीं हो जाता, अपितु सूक्ष्म रूप में अंतरिक्ष में विद्यमान रहता है तथा तरंगित होता रहता है। सदियों पूर्व ऋषि–मुनियों ने क्या कहा होगा उसे प्रत्यक्ष सुना जा सके– ऐसा अनुसंधान प्रयोग–विधि में है। संभवतः इसी आधार पर श्री कृष्ण द्वारा कही गई गीता को अपने ही कानों से सुनना सम्भव हो सकेगा, इसलिये वैज्ञानिकों ने कुरुक्षेत्र में **'ज्योतिसर'** नामक स्थान पर जहाँ श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया बताते हैं, ऐसे यन्त्र लगा रखे हैं जो ध्वनि तरंगों को पकड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

महर्षि पाणिनी के अुनसार सामान्य रूप से ध्वनि के दो रूप होते हैं–

आकाशवायु प्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छतियः स शब्दः।।

– वर्णोच्चारण शिक्षा

(अर्थात, आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला तथा नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उसे **'नाद'** कहते हैं। वह कण्ठ आदि स्थानों में विभाग को प्राप्त होता हुआ वार्णभाव को प्राप्त होता है, उसको शब्द कहते हैं।)

शतपथ ब्राह्मण में देवों तथा असुरों के बीच भेद प्रकट करने के लिये सर्वाधिक महत्त्व उनकी वाणी के अन्तर को दिया गया है–

तां देवाः असुरेभ्योऽन्तरायन्। – श.ब्रा.3.21.2.3

वाणी का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिये। वाणी में यह शंका नहीं होनी चाहिये कि यह क्या बोल रहा है। शत. ब्रा. में देवता अथवा ब्राह्मण तथा असुर अथवा म्लेच्छ कोई वर्ग विशेष न होकर गुणों के वाचक हैं। दोनों ही मनुष्य हैं, मात्र गुणों का अन्तर है।

7 एम.आई.डी.सी., नेताजी सुभाषचन्द्र मार्ग
सातपुर, नासिक, महाराष्ट्र–422007
मो. 09822753691

पत्र/कविता

अटल जी को यह कैसी श्रद्धांजलि ?

पिछले दो दिनों में दो ऐसी घटनाएं हुई हैं, जिन पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। ये दो घटनाएं ऐसी हैं, जो अटल जी के स्वभाव के विपरीत हैं। यदि अटल जी आज हमारे बीच होते और स्वस्थ होते तो वे चुप नहीं रहते। बोलते और अपनी शैली में ऐसा बोलते कि संघ और भाजपा की प्रतिष्ठा बच जाती बल्कि बढ़ भी जाती।

पहली घटना। स्वामी अग्निवेश जब अटल जी के पार्थिव शरीर पर श्रद्धांजलि अर्पित करने भाजपा कार्यालय गए तो उन्हें कुछ कार्यकर्ताओं ने मारा–पीटा। धक्का–मुक्की की। कुछ बहनों और बेटियों ने उन पर चप्पलें भी तानीं। ये लोग कौन हो सकते हैं ? क्या ये रस्ते–चलते लोग हैं? नहीं, ये सक्रिय कार्यकर्ता हैं। इसीलिए उन्होंने एक संन्यासी पर हाथ उठाया, उन्हें देशद्रोही कहा, उन्हें नक्सलवादी कहा। उन नौजवानों ने अग्निवेश जी की उम्र (79) का भी लिहाज़ नहीं किया। अटल जी भी अग्निवेश जी की कुछ बातों से सहमत नहीं होते थे। मैं भी नहीं होता हूं। अटल जी की और मेरी भी विदेश नीति के कुछ मुद्दों पर तीखी असहमति हो जाती थी। मैं 'नवभारत टाइम्स' में संपादकीय भी लिख देता था लेकिन वे घर बुलाकर मिठाई खिलाकर मुझसे बहस करते थे। उन्होंने कभी भी किसी अप्रिय शब्द का प्रयोग नहीं किया लेकिन उनकी महायात्रा के समय किसी संन्यासी के साथ ऐसा अभद्र व्यवहार करने वालों की यदि संघ और भाजपा के नेता भर्त्सना नहीं करेंगे तो क्या यह अटल जी को सच्ची श्रद्धांजलि मानी जाएगी?

दूसरी घटना!! यह हुई बिहार में मोतीहारी के गांधी विश्वविद्यालय में। एक मूढ़मति प्रोफेसर ने इंटरनेट पर लिख दिया कि ''भारतीय फासीवाद का एक युग समाप्त हुआ... अटल जी अनंत यात्रा पर निकल चुके।'' उस प्रोफेसर को कुछ कार्यकर्ताओं ने इतनी बुरी तरह से मारा कि वह बेचारा अस्पताल में पड़ा हुआ है। जाहिर है कि उस प्रोफेसर की यह टिप्पणी नितांत मूर्खतापूर्ण थी लेकिन अटल जी इसे सुनते तो वे ठहाका लगाकर कहते कि वाह, क्या बात है? उसे तो नोबेल प्राइज दिलवाइए !

डॉ. वेदप्रताप वैदिक
dr.vaidik@gmail.com

****

बिना लड़े जो भागता, बिखर वही फिर जाय

धारण जीवन में करो, यज्ञ सफल हो जाय।
समिधा बन आहूत हो, अग्नि रूप बन जाय।।

मन में हो गर भावना, होते दूर अभाव।
अभाव मिटते भाव से, बना इसे स्वभाव।।

सुर्खी बिंदी क्रीम से, सुंदर तू दिख पाए।
सदगुणों को धारण कर, सुंदर तू बन जाए।।

बदले ना आदत बुरी, समय बुरा ही लाय।
आदत बुरी बदल डाल, समय बदल खुद जाय।।

जो मुश्किल से लड़ पड़ा, निखर वही तो पाय।
बिना लड़े जो भागता, बिखर वही फिर जाय।

अपनी कमियाँ जान कर, लेना उसे सुधार।
कूड़ा जो भीतर पड़ा, झाड़ू उस पर मार।।

दोष देखता और के, दोष वही ले जाय।
कचरा पेटी वह बने, कूड़ा जाय समाय।।

बीते कल को याद कर, बूढ़ा रहे निराश।
कल क्या मिल पायेगा, सोचे युवा उदास।।

क्यों ऐसा तू कर रहा, क्या होगा परिणाम।
क्या सफल हो पायेगा, सोच करो फिर काम।।

हार से कभी ना डरो, डर ही देता हार।
हार से सदा सीख लो, फिर ना पाता हार।।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602/जी.एच.–53
सैक्टर–10, पंचकूला (हरि.)
मो. 09467608688

उच्चतम न्यायालय और महिला न्यायधीश

यह सुखद है कि स्वतंत्रता के 65 वर्ष उपरान्त उच्चतम न्यायालय में महिला न्यायधीशों की संख्या बढ़कर तीन हो गई है। यह स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रयासों को बल प्रदान करती है। बधाई। शुभकामनायें।

यह सर्वविदित है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में महिलाओं को प्रोत्साहन देने के प्रयास बहुत कम है। परन्तु भाजपा सरकार के प्रयासों से यह अथक प्रयास सम्भव हुआ।

उच्चतम न्यायालय में नव नियुक्त महिलाओं में सर्वश्री इंदिरा बनर्जी, जस्टिस इंदु मल्होत्रा और जस्टिस आर. भानुमति है।

देशवासियों को विश्वास हैं कि इन न्यायधीशों के द्वारा देश में महिलाओं के उत्पीड़न के विरूद्ध उचित न्याय मिलेगा।

देशवासियों को यह भी विश्वास है कि भविष्य में महिला न्यायधीशों की संख्या तेज़ी से बढ़ेगी।

कृष्ण मोहन गोयल
113 बाजार कोट
अमरोहा–244224

****

महामहिम राष्ट्रपति से निवेदन

आर्य समाज एक जागरुक राष्ट्र प्रहरी की भांति अपने स्थापना काल से ही राष्ट्रीयता का भाव जागृत करता आया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की प्रेरणा से स्वतंत्रता आन्दोलन में अंसख्य राष्ट्र भक्तों ने अपने जीवन को आहूत कर दिया। आज़ादी की लड़ाई में लगभग 85 प्रतिशत आर्य समाज के ही देश भक्त थे। आर्य समाज समय–समय पर अपने क्रान्तिकारी विचारों, राष्ट्रहित चिन्तन एवं सामाजिक सुधारों द्वारा समाज को जागृत करता आया है तथा राष्ट्र की अस्मिता को बचाना चाहता है।

आज की विकट परिस्थितियों में जब आतंकवाद, हमारे अस्तित्व को चुनौती दे रहा है, देश के अन्दर करोड़ों की संख्या में संदिग्ध व्यक्ति अवैध घुसपैठ करके हमारे देश के लिए गंभीर खतरा बन चुके हैं।

महोदय! ये करोड़ों अवैध घुसपैठिये देश के सभी क्षेत्रों में फैलते जा रहे हैं एवम् हमारी सुरक्षा, संसाधन एवं शान्ति के लिए चुनौती बनते जा रहे हैं।

अतः राष्ट्रवादी संगठन आर्य समाज आपसे निवेदन करता है कि इन सभी घुसपैठियों को तुरन्त देश से बाहर करने के लिए भारत सरकार को निर्देश देने की कृपा करें।

विकास अग्रवाल
प्रधान, जिला आर्य प्रतिनिधि सभा
हापुड़ (उ.प्र.)

****

स्मारिका का आवरण भी यादगारी हो

एक स्थानीय डिग्री कॉलेज, की स्मारिका प्रकाशित हुई है। मेरा कॉलेज के पदाधिकारियों – प्राचार्यों से आठ वर्षों से निरन्तर सम्पर्क बना हुआ है। मेरे अनुरोध पर कई ग्राहक आर्य जगत के बने हैं। इस स्मारिका में गणतन्त्र दिवस पर यज्ञ की फोटो भी छपी है और ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में निर्देशित पारिवारिक संगठन की उपयोगिता शीर्षक का लम्बा लेख भी छपा है। इसके लिए बधाई!

मुख्य आवरण पृष्ठ पर किसी नर्तकी का ऐसा फोटो छपा है जिसकी भर्त्सना की जा रही है क्योंकि उसमें अश्लीलता झलकती है। कार्यकारिणी की बैठक में फोटो के छापने पर गम्भीर आलोचना हुई कि उस स्थान पर स्वामी दयानन्द का फोटो क्यों नहीं छापा गया है? ने उत्तर दिया गया कि स्मारिका प्राचार्य ने छपवाई है अतः मैं दोषी नहीं हूँ। प्राचार्य नौकरी छोड़कर मेरठ चले गए हैं अतः उत्तर कौन दे? हर आर्य को सजग और जागरूक होकर कार्य करने चाहिए। स्मारिका की ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ–साथ आवरण पृष्ठ भी यादगारी हो।

इन्द्रदेव गुलाटी
नगर आर्य समाज
बुलन्दशहर

****

एस.एल. बावा डी.ए.वी. बटाला में 72वें स्वतन्त्रता दिवस पर यज्ञ

एस. एल. बावा डी.ए.वी. कॉलेज, बटाला में 72वें स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में प्रधानाचार्य डॉ. वीरेन्द्र भाटिया के यजमामत्व में यज्ञ का आयोजन किया। कॉलेज की आर्य समाज समिति के अधीन करवाए गए यज्ञ में सम्पूर्ण शिक्षक तथा गैर–शिक्षक स्टॉफ सदस्यों ने आहुति डालकर राष्ट्र की उन्नती हेतु ईश्वर से प्रार्थना की। इसके उपरान्त एन.सी.सी. विभागाध्यक्ष कैप्टन मुनीष यादव की देख–रेख में कॉलेज प्रांगण में राष्ट्रीय ध्वज फहरा कर सलामी दी गई। प्रधानाचार्य जी ने सभी स्टॉफ सदस्यों को स्वतन्त्रता दिवस की बधाई दी तथा देश की उन्नति में अपना योगदान देने के लिए प्रेरित किया। राष्ट्रीय गान गाकर कार्यक्रम की समाप्ति की गई। इस अवसर पर प्रो. डॉ. मंजुला उप्पल, प्रो. पुरुषोत्तम कुमार शर्मा, प्रो. दिनेश कुमार, प्रो. सुनील जेतली, प्रो. संजीव कौशल, प्रो. राजीव मेहता, प्रो. पवन मलिक सहित समूह स्टॉफ सदस्य उपस्थित रहे।

आर्य समाज विज्ञान नगर के यज्ञ में शामिल हुए डॉ. जयदीप आर्य

पतंजलि योगपीठ हरिद्वार से पधारे हुए मुख्य केंद्रीय प्रभारी डॉ. जयदीप आर्य कोटा के आर्य समाज विज्ञान नगर के दैनिक यज्ञ में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर उन्होंने पुरोहित मनोहर लाल शर्मा के ब्रह्मत्व में वेद मंत्रों के साथ आहुतियाँ प्रदान कर विश्व शांति एवं समृद्धि की कामना की।

यज्ञ के उपरांत अपने आध्यात्मिक उद्बोधन में उन्होंने शांति पाठ के मंत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि परम पिता परमेश्वर द्वारा रचित द्यौलोक में, अंतरिक्ष में पृथ्वी में, जल में, औषधियों में, वनस्पतियों में जो शांति व्याप्त है। हे परमेश्वर उस वन–उपवन में मौजूद शांति की हमारे जीवन में भी प्राप्ति होवे। जीवन में शांति की रसधारा बहती रहे, आनंद के स्रोत प्रकट होते रहें।

इस अवसर पर उन्होंने कहा कि योग के माध्यम से जीवन में शांति पाई जा सकती है, क्योंकि शांति का मूल हमारे भीतर है जो परमपिता परमेश्वर है। योग हमें उस ईश्वर से जोड़ने का कार्य करता है।

इस अवसर पर आर्य समाज के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा, आचार्य चंदन जी, जे.एस. दूबे, अरविंद पाण्डेय, दिनेश शर्मा, श्रीमति अनिता आर्य, गायत्री दूबे एवं प्रदीप शर्मा उपस्थित रहे।

संसार में वेदों की प्रतिष्ठा ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान कर नहीं पाया : आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के परिसर में आयोजित तीन दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय गुरुकुल महासम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन को संबोधित करते हुए आर्य समाज के विद्वान डॉ. वेदप्रकाश श्रोत्रिय ने कहा कि महर्षि दयानन्द जी के दिमाग में यह बात नहीं थी की संस्कृत से देश की उन्नति हो जायेगी। उन्होंने कहा कि संस्कृत से देश की उन्नति हो जायेगी। उन्होंने कहा कि संस्कृत भाषा से वेद प्रतिष्ठित नहीं है अपितु वेद से संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा है। विद्वान वक्ता ने कहा कि परमात्मा के ज्ञान में सभी शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हर समय विद्यमान रहते हैं। वेद उत्पन्न नहीं होते। वेदों का ज्ञान तो परमात्मा में हर काल में रहता है। विद्वान आचार्य ने कहा कि कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वेद या ज्ञान मनुष्य व मनुष्यों के द्वारा उत्पन्न होता है।

डॉ. श्रोत्रिय ने कहा कि महाभारत काल के बाद संसार में वेदों की प्रतिष्ठा ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान कर नहीं पाया। उन्होंने कहा कि बीज में अंकुर रहता है। किसान बीज से अंकुर पैदा नहीं करता अपितु यह तो उसमें पहले विद्यमान रहता है। जब बीज भूमि में पड़ता है और उसे उपजाऊ भूमि, सूर्य का प्रकाश व जल आदि मिलते हैं तो बीज से अंकुर प्रकट होता है। इसी प्रकार से सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों के हृदय में वेद ज्ञान उत्पन्न होता है। आचार्य जी ने कहा कि पृथिवी हमें आँखों से दीखती है परन्तु यह अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से मिलकर बनी है। यह परमाणु आंखों से दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। परमाणुओं के गुण ही पृथिवी में हैं। आचार्य जी ने कहा कि वेद में भी परमात्मा के वही गुण वर्णित हैं जो कि वस्तुतः परमात्मा में हैं। डॉ. वेदप्रकाश श्रोत्रिय ने अक्षर, वर्ण और वाक्य की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि अक्षर परमाणु की तरह अन्तिम इकाई है जो कि अविभाज्य है।

☞ पृष्ठ 01 का शेष

डी.ए.वी. जसोला ...

विद्यालय के प्राचार्य डॉ. वी.के. बडथ्वाल जी ने विद्यालय के परीक्षा–परिणामों की चर्चा करते हुए विद्यार्थियों को बधाईयाँ दी तथा अपनी कार्यशैली, क्षमता, दक्षता को और निखारने हेतु उचित सुझाव भी दिए।

इस अवसर पर श्रीमती प्रेमलता गर्ग (प्रबंधिका), कर्नल धवन (डी.ए.वी. क्षेत्रीय प्रबंधकतृ समिति सदस्य), श्री एस.आर. अरोड़ा (सचिव, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त समिति), श्रीमती अनीता आहूजा (प्राचार्य डी.ए.वी. वसंत कुंज), शामिल थे। प्रदर्शनी के साथ ही विद्यालय में 'रक्तदान शिविर' का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों के अभिभावकों के साथ–साथ विद्यालय के शिक्षकों एवं कर्मचारियों ने भी इस शिविर में बड़े जोश के साथ भाग लिया। वृक्षारोपण के साथ ही इस उत्सव का सफलतापूर्वक समापन किया गया।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2018-20
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2018-20
Posted at N.D.P.S.O. ON 22/23-08-2018

डी.ए.वी. विश्वविद्यालय जालंधर में आयोजित प्लेसमेंट ड्राईव में 5 विद्यार्थी चयनित

डी.ए.वी. विश्वविद्यालय में बीटेक सीविल इंजिनियरिंग के विद्यार्थियों के लिए अर्थ टू स्काई ईफ्रा प्राईवेट लिमिटेड द्वारा प्लेसमेंट ड्राईव का आयोजन किया गया। इसमें कंपनी द्वारा पाँच विद्यार्थियों रूपाली शर्मा, विश्वा पठानिया, दीक्षा कुमारी, अभिषय गॉडविन और अमरजीत सिंह का चयन किया गया। चयनित विद्यार्थियों को क्रोर्स खत्म होने पर सालाना साढ़े तीन लाख रूपये की जॉब दी जाएगी। विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. राकेश महाजन ने बधाई देते हुए कहा कि परिश्रम से कुछ भी हासिल किया जा सकता है। चयनित विद्यार्थियों को पढ़ाई के दौरान

विषयों की थ्योरिटिकल व प्रैक्टिकल दोनों को समान रूप से जानकारी दी गई थी। यही कारण है कि विद्यार्थी टीचर के सहयोग से अपने ज्ञान को इंड्रस्ट्री के मुताबिक ढाल पाए। कुलसचिव डॉ. सुषमा आर्या ने कहा कि विद्यार्थियों को बेहतर सुविधा उपलब्ध करवाने हेतु हर संभव चीजें उपलब्ध करवाई जा रहीं हैं। हाल ही में कई कंपनियों से टाईअप किया गया है ताकि विद्यार्थियों के पास आउट होने से पहले ही रोजगार उपलब्ध करवाया जा सके। प्लेसमेंट ऑफिसर अभिनव तिवारी व किरण चौधरी ने बताया कि प्लेसमेंट ड्राईव में 21 विद्यार्थियों ने भाग लिया था, जिसमें बेहतर करने वाले विद्यार्थियों का चयन किया गया है। आने वाले दिनों में कई अन्य कंपनियाँ आने वाली है जिसमें कई और विद्यार्थियों का चयन करवाया जाएगा।

डी.ए.वी. (थर्मल) पानीपत में हुआ संस्कारशाला कार्यक्रम

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल थर्मल कालोनी पानीपत में आज वैदिक परिवार द्वारा संस्कार शाला कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसके अन्तर्गत आगरा से पधारे वैदिक विद्वान आचार्य हरिशंकर जी ने बच्चों को भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों के बारे में जानकारी प्रदान की। उन्होंने कहा कि आज समाज में अंधविश्वास व सामाजिक बुराइयाँ फैली हुई हैं, जिनको दूर करने का एकमात्र उपाय भारतीय वैदिक परम्परा के अनुसार जीवन यापन करना है। इसी परम्परा के कारण एक समय था जब भारत को विश्व गुरु कहा जाता था। उन्होंने कहा कि अगर भारत को पुनः विश्व गुरु बनाना

है तो हमें फिर से वैदिक मूल्यों को अपनाना होगा। उन्होंने बच्चों को अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर मेहनत करने व भारतीय संस्कृति को अपनाने का आह्वान किया। वैदिक परिवार की ओर से डॉ. राजबीर आर्य ने भी बच्चों का मार्गदर्शन किया।

इस अवसर पर भारतीय संस्कृति से जुड़े प्रश्नों का उत्तर देने वाले बच्चों को सम्मानित किया गया। प्राचार्या श्रीमती ऋतु दिलबागी ने आए हुए सभी विद्वानों का धन्यवाद करते हुए कहा कि आज के युवाओं के लिए इस प्रकार के कार्यक्रमों का होना आवश्यक है जिससे कि वे अपनी महान परम्परा के बारे में जानकर अपने जीवन को सफल बना सके।

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अम्बाला शहर में यज्ञ से हुआ नये सत्र का आरम्भ

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय में बी.एड. कक्षा के नए सत्र का शुभारम्भ किया गया। इस अवसर पर बी.एड. के सभी छात्रों ने यज्ञ में भाग लेकर ईश्वर से कामना की कि आने वाला सत्र उन सब के लिए शुभ हो। प्राचार्य विवेक कोहली ने सभी अतिथियों का स्वागत औरं अभिनन्दन किया। उन्होंने बताया कि आर्य समाज के नियमों से आगे बढ़ा जा सकता है। डी.ए.वी. संस्था के महत्त्व के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि डी.ए.वी. संस्था छात्रों में संस्कारों का निर्माण करती है।

डॉ. विवेक कोहली ने छात्रों को

शुभारम्भ की बधाई दी और कहा आप राष्ट्र के निर्माता हैं, आपको पांच अवगुणों– निन्द्रा, तन्द्रा, कोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता का त्याग कर यशकृति की तरफ बढ़ना है और इस पहले दिन एक संकल्प लें कि आप एक अच्छा अध्यापक बनेंगे और अपना और अपने महाविद्यालय का नाम रोशन करेगें। उन्होंने कहा कि चरित्रवान बनें और चरित्र निर्माण करें।

कार्यक्रम का संयोजन व संचालन डॉ. नरेन्द्र कौशिक कर रहे थे। उन्होंने सभी पधारे अतिथियों तथा अभिभावकों का धन्यवाद किया। महाविद्यालय के सीनियर प्राध्यापकों में डॉ. सुषमा गुप्ता, डॉ. नरेन्द्र कौशिक, डॉ. नीलम लूथरा, डॉ. सतनाम कौर, डॉ. पूजा, श्री पवन कुमार आदि ने भी कार्यक्रम में भाग लिया और एक दूसरे को सत्र की सफलता के लिए शुभकामनाएं दीं।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**